सत्याग्रह

सत्याग्रह

(उपन्यास)

ऋषभचरण जैन

ज्ञान प्रकाशन
दिल्ली

१९५२

मूल्य डेढ़ रुपया

ज्ञान प्रकाशन, ७/१६, दरियागंज, दिल्ली द्वारा प्रकाशित और
गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस, दिल्ली में मुद्रित।

प्रारम्भिक

रक़बे के लिहाज़ से अफ्रीका इतना बड़ा देश है कि चार-पाँच हिन्दुस्तान आसानी से उसमें समा सकते हैं। दक्षिण-अफ्रीका, अफ्रीका के बिल्कुल दक्षिणी भाग को कहा जाता है। आज से सत्तर वर्ष पहिले दक्षिण-अफ्रीका बिल्कुल वीरान पड़ा हुआ था। परन्तु जब से वहाँ के एक टुकड़े में सोने की खानों का पता लगा है, तब से बस्ती शुरू हो गई, और आज जोहान्सबर्ग-नामक एक गुलज़ार शहर वहाँ आबाद है।

दक्षिण-अफ्रीका में दो रियासतें हैं। एक अङ्गरेज़ी, दूसरी पोर्चूगीज़। पोर्चूगीज़ भाग, 'डेलागोआबे' हिन्दुस्तान से जाते हुए दक्षिण-अफ्रीका का पहला बन्दर है। वहाँ से नीचे आने पर नेटाल पहली ब्रिटिश रियासत है, जिसके बन्दर-स्थान का नाम 'पोर्ट नेटाल' या डरबन है। पीटर मारित्सबर्ग नेटाल की राजधानी है, जो डरबन से ५०-६० मील दूर है। इससे आगे ट्रान्सवाल रियासत है, जिसमें सोने-हीरे की खानें हैं। इसकी राजधानी प्रिटोरिया है। जोहान्सबर्ग यहाँ से ३६ मील दूर है। ट्रान्सवाल के पश्चिम की ओर 'आरेञ्ज-फ्री-स्टेट', अथवा आरेञ्जिया रियासत आती है। कुछ आगे बढ़ने पर 'केप-कालोनी' की सरहद आ जाती है। इन चार अङ्गरेज़ी रियासतों के अलावा अफ्रीका का और भी बहुत-सा प्रदेश अङ्गरेज़ों के अधीन है, जहाँ पर वहाँ के आदि-निवासी रहते हैं।

दक्षिण-अफ्रीका में खेती खूब हो सकती है, और अनेक भाग अत्यन्त उपजाऊ हैं। मकई बहुत पैदा होती है, जो वहाँ के हब्शियों का प्रधान भोजन है। साग-तरकारी और तरह-तरह के फलों की वहाँ ख़ूब इफ़रात है।

सब से पहले अफ्रीका में कौन लोग बसते थे—यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हाँ, जब यूरोप-निवासी दक्षिण-अफ्रीका में गये, तो वहाँ हब्शी लोग रहते थे। कहते हैं—जब अमरीका में दासत्व-प्रथा अपने ज़ोर पर थी तो वहाँ के कुछ हब्शी भागकर दक्षिण-अफ्रीका में आ बसे थे। इस दृष्टि से हब्शी लोग अफ्रीका के आदि निवासी कहे जा सकते हैं। परन्तु सारे अफ्रीका में ५० लाख हब्शियों की आबादी है, जब कि इससे पचास-गुना आदमी वहाँ आसानी से रह सकते हैं।

हब्शी-जाति शरीर की मज़बूती के लिये संसार-प्रसिद्ध है। परन्तु फिर भी ये लोग इतने डरपोक होते हैं कि एक गोरे का बच्चा पचास हब्शियों को आसानी से भगा सकता है। बात यह है कि अभागे भारतीयों की तरह ये लोग भी निःशस्त्र कर दिये गए हैं। भाला फेंकने और तीरन्दाज़ी में ये लोग निपुण हैं, पर वे सब बेचारों से छीन लिए गये हैं।

गोरों ने अबोध हब्शियों पर तरह-तरह के टैक्स लगाये हैं। यह क्यों?—बात यह है कि खानों में काम करने के लिये गोरों को नौकरों की ज़रूरत पड़ती है, और अगर उन पर ये व्यर्थ और अत्याचार-पूर्ण टैक्स न लादे जायँ, तो स्वाधीनता-प्रिय हब्शी खुले खेतों में काम करने की बजाय भयङ्कर, बदबूदार, अँधेरी खानों में खून-पसीना एक करने को कैसे तैयार हों?—वहाँ जीते-जी मानों क़ब्रों में जाकर ग़रीब हब्शी क्षय आदि भयङ्कर रोगों के शिकार होते हैं, और बिना-मौत मरते हैं।

अब डच अर्थात् वलन्दा लोगों के आगमन का इतिहास भी

सुना दें। आज से लगभग चार सौ साल पहले ये वलन्दा-लोग मलायी[1] ग़ुलामों को साथ लेकर दक्षिण-अफ्रीका में आये। ये लोग बड़े वीर, लड़ाके और साथ-ही-साथ कुशल कृषक भी थे, और उनके पास बन्दूक़ इत्यादि आधुनिक शस्त्रों का भी अभाव न था। जब उन्होंने देखा—अफ्रीका की अधिकांश भूमि उपजाऊ है और यहाँ के निवासी साल का अधिकांश भाग आवारा-गर्दी और मटर-गश्ती में बिताते हैं तो उन्होंने इन दक्षिण-अफ्रीका वालों को अपना ग़ुलाम बनाया और खेती शुरू की।

धीरे-धीरे अँग्रेज़-प्रभुओं के चरण भी इस जगह पहुँचे। अँग्रेज़ों और डच-लोगों की प्रकृति एक-सी होती है। दोनों ही लालची, दोनों ही स्वार्थी, और दोनों ही कूटनीतिज्ञ!—अतएव विग्रह अनिवार्य था। दोनों ने बढ़ने की कोशिश की; दोनों ने ज़्यादा लोभ किया, और दोनों ने हब्शियों पर प्रभुत्व जमाने की कोशिश की। नतीजा इसका यह हुआ कि दोनों जातियाँ आपस में लड़ पड़ीं। खूब लड़ाइयाँ हुईं, खूब झगड़े हुए, खूब रक्त बहा, और मजूबा की पहाड़ियों पर अहंकारी अँग्रेज़ बुरी तरह पिटे और हारे।

परन्तु यह मजूबा की पहाड़ी की हार अङ्गरेज़ों के दिलों में एक कसक की तरह रह गई। सन् १८६० से १६०२ तक जो विख्यात बोअर-संग्राम हुआ, उसमें यह कसक निकली, और डच्च-सेनापति जनरल क्रोन्जे को जब लार्ड राबर्टसन ने हराया, तो उन्होंने महारानी विक्टोरिया को तार दिया—"मजूबा का बदला ले लिया।"[2] परिणाम-

१. ये मलायी जाति के मुसलमान हैं। मुख्य निवास-स्थान इनका केप-टाउन है। कुछ स्वतन्त्र व्यापार करते हैं, कुछ गोरों के नौकर हैं।

२. इस दूसरे बोअर-संग्रम में गांधीजी और उनके भारतीय साथियों ने अङ्गरेज-घायलों की बड़ी सेवा की; चालीस-चालीस मील चलकर घायलों को लाये, कष्ट सहा, जान पर खेले और उसके बदले में कृतघ्न गोरों ने 'काले क़ानून' की रचना की, जिसे लेकर ही सत्याग्रह-संग्राम आरम्भ हुआ।

स्वरूप 'ट्रान्सवाल' और 'आरेञ्ज-फ्री-स्टेट, की रचना हुई।

इन्हीं वलन्दा अथवा डच लोगों को दक्षिण-अफ्रीका में 'बोअर' कहते हैं। बोअर-लोग बड़े बहादुर लड़ाके और स्वतन्त्रता-प्रिय होते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी बड़ी बहादुर और सादगी-पसन्द होती हैं। अपनी स्वतन्त्रता इन स्त्रियों को इतनी प्यारी होती है कि विजयी, क्रूर लार्ड किचनर के समस्त अत्याचार इन्होंने सिर झुकाकर सह लिये। लार्ड किचनर ने भी इन्हें झुकाने में अपनी सभी क्रूरता खर्च कर दी। बेचारी स्त्रियों को अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर दिया गया, खाने-पीने की सख़्त तकलीफ़ दी गई, गर्मी के मौसम में भीतर कोठरियों में बन्द रक्खा गया, और अनेक बदमाश, कामान्ध गोरों ने शराब के नशे में मदान्ध होकर इन असहाय स्त्रियों पर बलात्कार तक किया!!

परन्तु सब-कुछ होते हुए भी ये बहादुर औरतें दृढ़ रहीं, और अन्त में खुद बादशाह एडवर्ड ने लॉर्ड किचनर को लिखा—"मैं यह सहन नहीं कर सकता। अगर बोअर-लोगों को झुकाने का यही उपाय हमारे पास हो, तो इसकी अपेक्षा मैं हर प्रकार की सुलह को पसन्द करूँगा। आप शीघ्र लड़ाई ख़त्म कर दीजिये।"

अन्त में सुलह हुई, और दक्षिण-अफ्रीका की चारों रियासतें एक तन्त्र के अधीन हुईं; और सच कहें तो—दक्षिण-अफ्रीका को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली। अगर्चे, दक्षिण-अफ्रीका ब्रिटिश राज्य कहलाता है, और उसका झण्डा यूनियन-जैक है, परन्तु वह वास्तव में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है, और दक्षिण-अफ्रीका के कार्य-कर्त्ताओं की अनुमति बिना ब्रिटिश-राज्य एक पैसा भी नहीं ले जा सकता। बोअर-लोग वहाँ प्रजा-सत्तात्मक राज्य (Republic Government) इसलिए खड़ा करना नहीं चाहते कि दक्षिण-अफ्रीका के कुछ भागों में गोरों का बाहुल्य है, और इस प्रकार करने से घरू-लड़ाई का सूत्रपात अनिवार्य होगा।

नेटाल में जब अङ्गरेज आकर बसे, तो उन्होंने देखा—यहाँ गन्ना, चाय और काफ़ी की पैदायश बहुत हो सकती है, और अगर बड़े पैमाने

पर इन चीज़ों की खेती की जाय, तो इसके लिए सैकड़ों-हज़ारों मज़दूरों की ज़रूरत है। थोड़े-से अङ्गरेज़ भला क्या-क्या करेंगे? अतः उन्होंने ग़रीब हब्शियों को इसके लिए डराना, धमकाना, और बहकाना-फुसलाना आरम्भ किया। पर चूँकि अब गुलाम-प्रथा का अन्त हो गया था, इसलिए गोरे-लोग उन पर अपने स्वभाव-सिद्ध अत्याचार को चरम-सीमा तक न पहुँचा सके। हब्शी लोग बड़े आलसी और मौजी होते हैं।—वे साल में तीन-चार महीने साधारण परिश्रम करके भी अपना ख़र्च अच्छी तरह चला लेते हैं, अतएव तमाम साल गोरों के क्रूर पंजे के नीचे कोल्हू के बैल की तरह पिलने को वे तैयार न हुए।

पर बिना मज़दूर मिले गोरों की महत्वाकांक्षाओं पर पाला पड़ा जा रहा था!—अतएव उन्होंने भारत-सरकार से लिखा-पढ़ी शुरू की, और अभागे, ग़रीब, भारतीयों को अपनी दासता की बेड़ियों में बाँधने का अनुरोध किया!—और अफ़सोस!—भारत की गोरी सरकार ने अपने लाड़ले भाइयों का अनुरोध स्वीकार भी कर लिया!—फलतः सन् १८६०ं में भारतीय मज़दूरों का पहला जहाज़ अफ्रीका आया।

अगर्चे, इस समय गुलाम-प्रथा का अन्त हो गया था, परन्तु स्वेच्छाचारी गोरों की प्रकृति में अन्तर न आया था, और न उनके दिलों से कालों को गुलाम बनाने का लोभ ही दूर हुआ था। सर विलियम विल्सन हण्टर, वहाँ के एक बहुत-बड़े नागरिक, ने नेटाल के मज़दूरों की स्थिति को 'नीम गुलामी' स्वीकार किया था। ये बेचारे ग़रीब, अनपढ़ मज़दूर नेटाल के भारतीय दलालों के चकमे में आकर, कृत्रिम और झूठे सब्ज़-बाग़ दिखाए जाने पर नेटाल चले आए। यहाँ पर इन बेचारों की ऐसी दुर्दशा हुई, और उनका जीवन ऐसे संकट से गुज़रा, कि ये लोग शीघ्र ही अपनी रीति-नीति, धर्म-कर्म, सब-कुछ भूल गये, और यहाँ तक नौबत पहुँच गई, कि एक वेश्या और गृहस्थ-स्त्री में कुछ भी भेद न रहा।

जब गिरिमिटिया-लोगों[1] के नेटाल जाने की खबर मारीशस पहुँची, तो वहाँ के मज़दूरों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक भारतीय व्यापारियों की लार भी टपकी। मारीशस में हज़ारों भारतीय-व्यापारी और मज़दूर रहते हैं। उनमें से एक व्यापारी स्वर्गीय श्री अबूबकर आमद ने नेटाल में एक दूकान खोलने का निश्चय किया।

इस समय नेटाल के अँग्रेज़ों ने यह कल्पना भी न की थी कि भारतीय क्या-क्या कर सकते हैं। वे इस समय गिरिमिटिया-मज़दूरों की मदद से चाय, काफ़ी, गन्ने की खेती कर, खूब नफा कमा रहे थे, और इस नफ़े से उन्होंने दक्षिण-अफ्रीका में बड़ी-बड़ी विशाल अट्टालिकाओं का निर्माण कराया। ऐसे समय में चतुर व्यापारी सेठ अबूबकर ने अपना व्यापार वहाँ फैलाया। इधर भारत में उनकी जन्म-भूमि पोरबन्दर और आस-पास के इलाके में यह ख़बर पहुँची—कि सेठ जी आजकल नेटाल में खूब मुनाफ़ा कमा रहे हैं। जल्द ही दूसरे लोग—मेमन, बोहरा, और गुजरात-काठियावाड़ के हिन्दु-मेहता—भी वहाँ पहुँच गए।

अब नेटाल में दो तरह के भारतीय हो गए। (१) गिरिमिटिया-मज़दूर, (२) स्वतन्त्र व्यापारी-वर्ग। इधर गिरिमिटिया-लोगों के बाल-बच्चे हुए। अगरचे कानूनन् उनके बाल-बच्चे मज़दूरी के लिए बँधे हुए न थे, तो भी उन पर कानून की कुछ कठोर धाराएँ लगा दी गई थीं। गिरिमिटिया पाँच साल मज़दूरी करने के बाद स्वतन्त्र हो जाते थे। इनमें से कुछ स्वदेश लौट आते थे, और बहुतेरे वहीं बस जाते थे। जो वहीं बस जाते थे, वे 'फ्री इण्डियन' कहलाते थे;—हिन्दी में 'मुक्त भारतीय' कह सकते हैं। परन्तु इनमें और स्वतन्त्र भारतीयों (व्यापारी-वर्ग) के अधिकारों में भेद था। जैसे, एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिए इन मुक्त भारतीयों को लाइसेन्स लेना पड़ता था, विवाह करती दफ़ा भी उन्हें दफ्तर में उसे दर्ज कराना पड़ता था, आदि आदि। इसके

१. जो मजदूर नेटाल जाते हैं, वे एग्रीमेण्ट में आये हुए या गिरिमिटिया कहलाते हैं। मारीशस टापू नेटाल और भारत के बीच में पड़ता है।

अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार की कठोरता उन पर की जाती थी।

जब भारतीयों ने अपना व्यापार नेटाल में फैलाया, तो नेटाल-स्थित मुक्त भारतीय तो उनके ग्राहक बने ही, साथ ही गोरों से डरने वाले भोले-भाले हब्शी भी उनके ग्राहक बन गए। और इस तरह हब्शी-ग्राहकों से भारतीय व्यापारियों ने खूब लाभ उठाया।

इसके बाद, जब भारतीय व्यापारियों ने सुना कि ट्रान्सवाल और फ्री-स्टेट में बोअर लोगों के बीच भी उनका व्यापार उन्नत हो सकता है, तो उन्होंने उस तरफ़ रुख किया, और वहाँ भी दुकानें खोलीं। बोअर-लोग अँग्रेजों की अपेक्षा अधिक सीधे-सादे, आडम्बर-शून्य होते हैं, और अँग्रेजों की तरह भारतीयों से घृणा या उपेक्षा भी प्रकट नहीं करते हैं, अतः ट्रान्सवाल और फ्री-स्टेट में भारतीय व्यापारियों को खूब बोअर-ग्राहक मिलने लगे।

अब केप-कालोनी बाक़ी रह गया। वहाँ भी कितने ही भारतीय जा पहुँचे, और व्यापार द्वारा धन कमाने लगे। इस प्रकार, क्रमशः चारों राज्यों में भारतीय फैल गए। इस समय स्वतन्त्र व्यापारियों की संख्या पचास हज़ार और मुक्त भारतीयों की एक लाख थी।

जब भारतीय व्यापारी इस तरह चारों तरफ़ फैल गए, और मुक्त भारतीयों ने भी साग-सब्ज़ी इत्यादि की खेती कर, गोरों की प्रतिस्पर्द्धा आरम्भ कर दी, तो अंग्रेजों के कान खड़े हुए। मुक्त भारतीयों की बढ़ती हुई संख्या, और फलस्वरूप भारतीय व्यापारियों की उन्नति और अपने व्यापार की अवनति देखकर उन्होंने धारा-सभा में एक बिल पेश करवाया—जिसके अनुसार किसी भी स्वतन्त्र भारतीय को धारा-सभा में (केवल भारतीय होने के कारण) मत देने का अधिकार न रहता। भारतीयों ने इसका विरोध किया, और गाँधी जी के प्रयत्न से एक ही रात में चार सौ भारतीयों के दस्तख़तों की दरख्वास्त पहुँची। इससे धारा-सभा के सदस्यों के कान तो अवश्य खड़े हुए, परन्तु कानून पास हो गया। कानून स्वीकृत होने पर दस हज़ार स्वतन्त्र भारतीयों के

दस्तखतों की एक दरख्वास्त चारों रियासतों के तत्कालीन प्रधान-सचिव लार्ड रिपन के पास पहुँची। इस दरख्वास्त से प्रभावित होकर उन्होंने उस बिल को नामंजूर करते हुए कहा—"ब्रिटिश सल्तनत कानून में रंग-भेद को स्थान नहीं दे सकती।"

गोरे व्यापारी तब भी न माने, और फलस्वरूप दूसरी प्रकार के दो कानून धारा-सभा में पेश किये गए। एक का आशय था कि बिना राज्य-अधिकारी से लाइसेन्स लिये कोई आदमी किसी किस्म का व्यापार न शुरू कर सके। इस पर भी खूब आन्दोलन हुआ, विरोध हुआ, पर कानून पास हो ही गया। अब, गोरों को तो लाइसेन्स फ़ौरन मिल जाता था, बेचारे भारतीयों को तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़ते थे, खर्च करना पड़ता था; परेशानी होती थी।

गोरों को यह भी भय था कि अगर तेंतीस करोड़ भारतीयों का रुख दक्षिण-अफ्रीका की तरफ फिर गया तो हम चालीस हज़ार गोरे तो चींटी की तरह उनके पैरों-तले रौंदे जायँगे। अतएव इसी भय की निवृत्ति के लिए दूसरा कानून पेश किया गया। उसका आशय यह था कि भविष्य में वही भारतीय नेटाल में प्रवेश कर सकता है, जो यूरोप की किसी भी भाषा का अच्छा जानकार हो। बस, इससे तेंतीस करोड़ भारतीयों के उबल पड़ने का भय जाता रहा।

ग़रीब, मुक्त भारतीयों के लिए गोरों ने क्या षड्यन्त्र सोचा, वह भी सुनिए। एक पक्ष ने कहा कि प्रत्येक भारतीय गिरमिट की मियाद खत्म होने पर भारत लौट जायँ, दूसरा पक्ष कहता था, कि गिरमिट की मियाद खत्म होने पर या तो फिर अपने को गिरमिट में बाँध लें, अन्यथा उनसे बहुत भारी और असह्य मनुष्य-कर लिया जाय—गोरों ने ऐसा कोलाहल मचाया, कि नेटाल की सरकार को एक कमीशन की नियुक्ति करनी पड़ी। असल में दोनों पक्षों की माँगें ही अन्याय-पूर्ण थीं, इसलिए कमीशन को जो-कुछ प्रमाण मिला, वह शुरू से आखिर तक दोनों पक्षों के ख़िलाफ़! इसलिए उस वक्त जीती मक्खी न निगली जा

सकी, और गोरों की हिमायतिन--नेटाल की सरकार ने इस सम्बन्ध में भारत सरकार से पत्र-व्यवहार शुरू किया। पर भारत सरकार अपने लाड़ले भाइयों के इस घोर अनुचित आग्रह को मानने का कोई बहाना न ढूँढ सकी।

अब इस, तथा ऐसे ही अनेक कारणों को लेकर नेटाल में उत्तर-दायित्व-पूर्ण शासन-व्यवस्था की स्थापना के लिए आन्दोलन शुरू हुआ और उसे यह सत्ता सन् १८९३-९४ में प्राप्त हो गई। अब नेटाल की सरकार में अपने पैरों पर आप खड़े होने की शक्ति आ गई, और इस नवीन सरकार-द्वारा उस सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए दूत भेजे गए। उनकी इच्छा थी कि प्रत्येक भारतीय की कमर पर ३७५) रु० वार्षिक कर का अन्याय-पूर्ण बोझ लादा जाय। मतलब इसका यह था—कि कोई भी मुक्त-भारतीय इतना भारी कर न दे सकने के परिणाम-स्वरूप नेटाल में न रहने पावे। भारत के तत्कालीन वाय-सराय ने इस कर को २५ पौंड से घटाकर ३ पौंड कर दिया। यह कर न सिर्फ मज़दूर को, बल्कि उसकी स्त्री और वयस्क बालकों को भी देना पड़ता था। इस तरह प्रत्येक मुक्त-भारतीय को लगभग १२ पौंड कर प्रतिवर्ष देना पड़ता था। अब यह कर कितना दुःखदायी मालूम पड़ता था—यह तो केवल भुक्त-भोगी ही जान सकते हैं! भारतीयों ने इसका खूब विरोध किया, ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार को अर्जियाँ भेजी गईं, पर स्वेच्छाचारी सरकार का आसन न हिला! न हिला!!

नेटाल के अतिरिक्त—केप-कालोनी को छोड़कर—दक्षिण-अफ्रीका के अन्य राज्यों में भी निर्दोष भारतीयों को वक्र-दृष्टि से देखा जा रहा था। ज़रा इनकी कहानी भी सुन लीजिए—

ट्रान्सवाल में भारतीय १८८१ ई० में पहले-पहल आए। एक के बाद एक अनेक व्यापारियों ने वहाँ अपना व्यापार फैलाया। ईर्ष्यालु गोरों को यह सहन कहाँ? अतः भारतीयों के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ

हुआ, धारा-सभाओं में भारतीयों को निकाल देने की दरख्वास्तें जाने लगीं। इन अनुचित दरख्वास्तों में भारतीयों पर कुत्सित-से-कुत्सित लांछन लगाये गए। जैसे—"ये लोग यह भी नहीं जानते, कि मानवी-सभ्यता क्या चीज़ है। व्यभिचार-जनित रोगों से उनके शरीर सड़ रहे हैं, औरतों को वे अपना शिकार समझकर उनपर भयानक अत्याचार करते हैं।" फलतः धारा-सभा में भारतीय-विरोधक एक बिल पेश हुआ भारतीय, प्रजासत्तात्मक ट्रान्सवाल के प्रेसीडेण्ट क्रूगर के घर पहुँचे, तो उस मूढ़, अहंकारी ने उन्हें अपने घर में भी न घुसने दिया, और बाहर ही खड़े होकर कहा—"आप इस्माइल की औलाद हैं, और ईसा की औलाद की ग़ुलामी करना ही आपके भाग्य में है। इसलिए जो-कुछ थोड़े-बहुत अधिकार हम आपको दें, आपको उनके लिए ही हमारा कृतज्ञ होना चाहिए।" यह थी दम्भ और अहम्मन्यता की पराकाष्ठा!!

बस, १८८३ ई० में एक घोर अनुचित, कठोर, दुष्टता-पूर्ण क़ानून पास कर दिया गया। आशय वही—"२५ पौंड कर प्रत्येक भारतीय से लिया जाय, और ट्रान्सवाल में उसे एक इञ्च ज़मीन भी न दी जाय।" परन्तु बड़ी सरकार (ब्रिटिश सरकार) ने इस कानून का विरोध किया। जिसके फलस्वरूप मामला पंचों के हाथ में आया। पंचों ने फैसला किया, कि २५ पौंड की जगह ३ पौंड कर लिया जाय, और ट्रान्सवाल की सरकार जहाँ बतावे, वहाँ ही जगह मिल सके।

बस, अब भरतीयों की दुर्गति का ठिकाना न रहा। उन्हें शहरों से निकालकर बसने के लिए, गन्दी-से-गन्दी ज़मीन दी गई। भारत के भङ्गी-टोलों में जैसी गन्दगी और दरिद्रता दिखाई देती है, इन मुहल्लों में भी वैसी ही दिखाई देती थी। साथ ही इस संशोधित विधान के अनुसार, भारतीय, व्यापार भी ऐसी ही गन्दी बस्तियों में कर सकते थे; शहर से तो उन्हें मानो दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका गया!! बोअर-युद्ध के आरम्भ तक भारतीयों की यही दुखद परि-स्थिति रही।

फ्री-स्टेट के गोरों ने तो कमाल ही कर दिया। भारतीयों की दस-पन्द्रह दुकानें भी वहाँ न हो पाई थीं, कि वावैला शुरू हुआ, और धारा-सभा ने एक ही क़ानून में मैदान साफ़ कर दिया! इस नृशंसता-पूर्ण क़ानून के अनुसार भारतीय वहाँ न किसान बनकर रह सकता था, न व्यापारी; वोट देने का अधिकार तो दूर की बात है!—हाँ, इतना अनुनय दिखाया गया, कि विशेष राजकीय अनुमति पाकर भारतीय, मज़दूर अथवा होटलों के नीच वेटर-इत्यादि बनकर रह सकते थे!! इस तरह यहाँ भी भारतीयों पर दोनों हाथ कुल्हाड़ा चला।

केप-कालोनी में भारतीयों का विरोध कुछ कम था। पाठशालाओं में हिन्दुस्तानी बच्चे दाख़िल नहीं किए जा सकते थे, हिन्दुस्तानी मुसाफ़िर होटलों में मुश्किल से जगह पाते थे—इत्यादि। परन्तु व्यापार अथवा ज़मीन के सम्बन्ध में भारतीयों पर कोई प्रतिरोध न था। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि केप-कालोनी में मलायी-लोग अधिक संख्या में रहते थे। ये मलायी डच हैं, और इस्लाम-धर्म के पैरोकार हैं। अतएव, हिन्दुस्तानियों का—विशेषतः मुसलमानों का—सम्बन्ध इनसे फ़ौरन हो गया, और अनेक हिन्दुस्तानी मुसलमानों ने तो मलायी-स्त्रियों से विवाह भी कर डाला। अब जो क़ानून हिन्दुस्तानियों के ख़िलाफ़ होता—वह मलायियों के भी खिलाफ पड़ता!—और यह सम्भव कैसे था!—क्योंकि मलायी-लोग तो एक प्रकार से डच ही ठहरे। इस प्रकार केप-कालोनी में रंग-द्वेष कम रहा।

दूसरा कारण यह भी—कि केप-कालोनी दक्षिण-अफ्रीका का सब से पुराना राज्य और शिक्षा-स्थल है, इसलिए वहाँ सज्जन और उदार गोरों का सर्वथा अभाव न था। परन्तु यह कैसे सम्भव था, कि पड़ौसियों की हवा केप-कालोनी में न पहुँचती? अतः भारतीयों के प्रवेश और उनके व्यापार को रोकने के लिए लाइसेन्स आदि देने के क़ानून गढ़े गए—मतलब यह कि १८९९ तक दक्षिण-अफ्रीका का दरवाज़ा भारतीयों के लिए क़रीब-क़रीब बन्द हो गया!!

जब समस्त दक्षिण-अफ्रीका से भारतीयों को इस प्रकार दुरदुराया जा रहा था, प्रत्येक प्रतिष्ठित भारतीय तक 'कुली' के नाम से पुकारा जाने लगा, और सड़कों पर चलते हुए भारतीय भी गोरों-द्वारा तिरस्कृत किए जाने लगे, तो सन् १८९३ ई० में, वहाँ पर सर्वस्व-त्यागी, महा-पुरुष गांधीजी का—एक साधारण बैरिस्टर के रूप में—अवतरण हुआ। संयोग-वश, दादा अब्दुल्ला नाम के, पोरबन्दर के सेठ के मुक़दमे में मदद देने को उन्हें दक्षिण-अफ्रीका जाना पड़ा। नेटाल पहुँचने पर गांधीजी ने जैसा भयानक कष्ट पाया, और गोरों ने पद-पद पर उन्हें जैसा अपमानित किया—उससे उनके हृदय पर सहसा बड़ा भयानक धक्का लगा!—गांधीजी को रेल के पहले, दूसरे दरजे में न बैठने दिया गया, रेल में से उनका सामान निकालकर फेंक दिया गया, और कई जगह नर-पशु गोरों ने उन महापुरुष को खूब पीटा भी!—और इस तरह गांधीजी ने भारतीयों की परिस्थिति का अच्छी तरह अनुमान और अध्ययन कर लिया।—और सच पूछिए तो सत्याग्रह का अंकुर भी यहीं से फूटा!!

सन् १८९४ ई० में गांधी जी का वह काम समाप्त हो गया, जिस के सम्बन्ध में वे दक्षिण-अफ्रीका गये थे, और उन्होंने लौटने की तैयारी की। विदाई की सभा में किसी ने उनके हाथ में एक अखबार लाकर रक्खा। उसमें सहसा उन्होंने पढ़ा, कि धारा-सभा में किसी ऐसे कानून पर विचार हो रहा है, जिसके द्वारा भारतीयों के तमाम अधिकार छीन लिए जाते। गांधी जी ने सभा के लोगों को उस क़ानून का रहस्य समझाया, और उसका विरोध करने की सलाह दी। इस तरह वह विदाई की सभा एक परामर्श-सभा बन गई। गांधीजी से अनुरोध किया गया कि वे कुछ दिन वहाँ ठहर कर आन्दोलन चलाने में सहा-यता दें। गांधीजी वहाँ ठहरे और जैसा पहले कहा जा चुका है, उनके अध्यवसाय से ४०० दस्तख़तों की पहली दरख़्वास्त नेटाल की धारा-सभा में और १०,००० दस्तख़तों की दरख़्वास्त लार्ड रिपन के पास

फिर गाँधीजी भारत लौटने को तैयार हुए तो वहाँ के उत्साही भारतीयों ने फिर उनसे कुछ दिन ठहरने का आग्रह किया और कहा कि अगर आप कुछ दिन और ठहर जायँ तो हमारे कुछ और कष्ट भी दूर हो सकते हैं। गाँधीजी का तो जन्म ही सेवा के लिए हुआ था, वे फिर ठहर गये और 'नेटाल-इण्डियन-कांग्रेस' के नाम से भारतीयों की एक राष्ट्रीय संस्था स्थापित हुई। सन् १८९६ ई० में गाँधीजी कुछ दिन के लिए भारत लौटे। यहाँ आकर प्रसिद्ध पत्र-सम्पादकों, लोकमान्य और गोखले-जैसे नेताओं और अन्य गण्य-मान्य पुरुषों से मिले। आपके अध्यवसाय से स्थान-स्थान पर सभाएँ हुईं, लेक्चर हुए और दक्षिण-अफ्रीका के भारतीयों की समस्या खुले ढङ्ग से भारत-निवासियों के सम्मुख रक्खी गई। पत्रों में टिप्पणियाँ हुईं, लोगों में जोश पैदा हुआ, सर्व-साधारण को दक्षिण-भारतीयों के प्रति सहानुभूति और अनुराग पैदा हुआ।

इन सभाओं और इस आन्दोलन की खबर नमक-मिर्च लगकर अफ्रीका और इङ्गलैण्ड में पहुँची। दक्षिण-अफ्रीका के गोरों ने जब सुना—गाँधी ने उनके विरुद्ध ज़हर उगला है, उन्हें बदनाम किया है, तो उनकी उच्छृङ्खलता एकबारगी उछलकर ऊपर आगई और वे लोग गाँधीजी को अपना बड़ा भारी दुश्मन समझने लगे।

इसी समय नेटाल से एक तार गाँधीजी को मिला, जिसमें उन्हें फ़ौरन चले आने के लिए लिखा था। लगनवाले गाँधीजी क्षण-भर की देर किये बिना चलने को तैयार होगये और स-परिवार दक्षिण-अफ्रीका को चले। उनके साथ ही एक दूसरे स्टीमर में कोई ८०० भारतीय और थे—जो अपने-अपने काम से जा रहे थे; गाँधीजी से उनका कोई सम्पर्क नहीं था। इन दोनों जहाज़ों का नाम 'कोर्लैण्ड' और 'नादिरी' था।

बस, यहाँ हमारी प्रस्तावना ख़त्म होती है। आगे, गाँधीजी कैसे अफ्रीका पहुँचे, और किस तरह युद्ध चला और किस तरह विजय पाई, यही हमारी पुस्तक का विषय है।

एक

(१)

एक दिन का तीसरा पहर। एक मुसलमान व्यापारी डर्बन की एक सुनसान सड़क पर चला जा रहा है। व्यापारी का नाम अब्दुल्ला है और भारत से आये हुए आठ सौ मुसाफ़िरों के स्वागतार्थ डर्बन के बन्दरगाह की तरफ़ उसका रुख़ है। जिन दो जहाज़ों में भारतीय सवार थे, नेटाल के गोरों के आग्रह से, नेटाल सरकार ने दो-तीन दिन से उन्हें खाड़ी में रोक रक्खा था। बड़ी कठिनता से आज उतरने की आज्ञा मिली है।

अचानक किसी तरफ़ से आवाज़ आई—"ओ, कुली!—ओ, कुली-मर्चेण्ट!"

करोड़पति भारतीय व्यापारी अब्दुल्ला ठहरकर इधर-उधर ताकने लगा। सहसा एक गली के मुहाने पर एक लम्बा-तगड़ा गोरा दिखाई दिया और उसके पीछे-पीछे और बहुत से गोरों का झुण्ड!

उस लम्बे-तगड़े गोरे ने कड़ककर कहा—"ठहर जा, सूअर!"

दादा अब्दुल्ला ने खून की घूँट पी और खड़े रह गये।

गोरा अपने साथियों-सहित उद्दण्डता-पूर्वक चलता हुआ आगे आया और अपने दाहिने मज़बूत हाथ से दादा अब्दुल्ला का कन्धा पकड़कर कहा—"कहाँ जाता है?"

दादा अब्दुल्ला का मुँह लाल हो गया। एक बार इधर देखा,

एक बार उधर, एक बार सड़क की तरफ़ देखा—एक बार गोरों के झुण्ड की तरफ़ और तब संयत स्वर में उत्तर दिया—"बन्दरगाह !"

"बन्दरगाह ?" गोरे ने दाँत किटकिटाकर कहा—"गांधी को लेने ? मुर्गी के बच्चे !—सब तेरी बदमाशी है !—तूने अपने जहाज़ों पर चढ़ाकर आठसौ हिन्दुस्तानी कुत्तों को यहाँ बुलाया है !—क्यों तू इस देश को अपने देश के नर-पशुओं से पाट देना चाहता है ! हरामज़ादे मैं तुझे जान से मार डालूँगा !"

यह कहकर उस गोरे ने दाँत किचकिचाकर ज़ोर से मुट्ठी बाँधी। असहाय अब्दुल्ला ने विनीत स्वर में कहा—"साहब, गाली क्यों देते हैं ?"

शायद गोरा प्रहार करता, इतने में पीछे के झुण्ड में से आवाज़ आई—"टामसन ! मतलब की बात कहो ?"

"देखो !" उस गोरे टामसन ने कहा—"तुम अपने इन जहाज़ों को मुसाफ़िरों-सहित अभी लौटा दो !"

"लौटा दूँ ?" दादा अब्दुल्ला ने कहा—"क्यों ?—गवर्नमेण्ट की आज्ञा प्राप्त हो जाने के बाद भी किस कानून से लौटा दूँ ?"

"सुअर का बच्चा !" गोरे ने क्रूरतापूर्वक वृद्ध व्यापारी को झँझोड़कर कहा—"कैसी गवर्नमेण्ट और कैसा क़ानून ! हम गवर्नमेण्ट हैं और जो हम कहते हैं वही क़ानून है !—हम कहे देते हैं कि अगर तेरी शामत ने धक्का नहीं दिया है, तो इसी वक्त इन जहाज़ों को लौटा दे, वर्ना याद रख···"

कहते-कहते गोरे ने फिर भिंची हुई मुट्ठी का घूँसा दिखाया।

वृद्ध अब्दुल्ला का चेहरा रक्त-वर्ण हो गया और उन्होंने एक बार ज़ोर-से झटका मारकर अपना कन्धा छुड़ा लिया। गोरा आगे बढ़ा, तो ललकारकर कहा—"बस साहब, दूर रहकर बात करो !"

गोरा कुछ सहम गया।

अब्दुल्ला ने कहा—"कहो, क्या कहते हो ?"

"हम कहते हैं—जहाज़ों को वापस लौटा दे !"

"यह नहीं हो सकता !"

"नहीं हो सकता, तो याद रख, हम तेरी दूकान में आग लगा देंगे, तुझे जान से मार डालेंगे, और उस बदमाश गांधी को और सब हिन्दुस्तानी कुत्तों को रसातल पहुँचा देंगे। समझा ?"

"तो आप मुझे धमकाते हैं ?"

"हाँ, बे, हाँ; धमकाते हैं !—बोल क्या कहता है ?"

"अच्छा तो आप," दादा अब्दुल्ला ने दो क़दम पीछे हटकर कहा—"भले ही मुझे मार डालिये—मैं जहाज़ों को कदापि न लौटाऊँगा।—गवर्नमेंट की ऐसी आज्ञा होती तो दूसरी बात थी, आपकी गैरकानूनी आज्ञा-पालन मैं नहीं करूँगा !"

"ओ बदमाश ! देखूँ तेरा कानून !"—कहकर वह गोरा आँधी की तरह आगे झपटा, परन्तु सहसा कई अन्य गोरे उसके आगे आ गए। बोले—"ओह ! हमारा दुश्मन वह गांधी है। इसे जाने दो, जब गांधी आयगा, तब देखेंगे ! इस गीदड़ को मारकर क्यों अपने हाथ गन्दे करें !······जा कुत्ते, हमारे शिकार गांधी को लेकर जल्द आ !"

दादा अब्दुल्ला साँस छोड़कर डर्बन के बन्दरगाह की तरफ भागे।

(२)

दादा अब्दुल्ला भाग गए और गोरों का झुण्ड वहीं खड़ा रहा। सहसा सामने से एक बड़ी भारी घोड़ा-गाड़ी आती दिखाई दी। छत पर सामान लदा हुआ था और भीतर ऊँचा टोप लगाये हुए एक अंग्रेज युवक बैठा था।

टामसन ने उसे देखते ही उछल कर कहा—"हुर्रा ! हलो मिस्टर हर्बर्ट !"

—कहकर वह लम्बा-तगड़ा जवान बच्चों की तरह कूदता हुआ

गाड़ी के पास जा पहुँचा।

गोरों का झुण्ड भी उधर चला।

मिस्टर हर्बर्ट ने गाड़ी रुकवा दी और नीचे उतर कर मिस्टर टामसन से हाथ मिलाया। भीड़ देखकर बोले—"यह क्यों?"

टामसन ने कहा—"तुम्हें पता नहीं?—ओह! हाँ—"

"हाँ, मैं अभी जोहान्सबर्ग से चला आ रहा हूँ। क्यों—क्या मामला है?"

"अरे, वह गांधी—"

हर्बर्ट ने स्वर-में-स्वर मिलाकर कहा—"हाँ, वह गांधी....."

"वह गांधी, हज़ारों हिन्दुस्तानी कुत्तों को साथ लिये हम पर चढ़ाई करने आ रहा है!"

"चढ़ाई करने?" हर्बर्ट ने कहा—"तो क्या जंग होगा? हिन्दुस्तानी लड़ाई करेंगे?"

"नहीं, वह बदमाश चाहता है कि लाखों-करोड़ों बेकार हिन्दुस्तानी कुत्तों से इस देश को भर दे और हमें व्यापार न करने दे!"

"हाँ, मेरे याद आया, शायद इसी शख्स ने तो हिन्दुस्तानियों की दरख़्वास्त लार्ड रिपन के पास भिजवाई थी?"

"हाँ, और सारे हिन्दुस्तान में हमारे ख़िलाफ़ बकता फिरा और हमको ब्रिटिश इण्डिया में मुँह दिखाने-लायक न रखा।—इंग्लैण्ड तक हमारी बदनामी पहुँची है!"

"हाँ?"

"हाँ?"

....

....

"अच्छा, आप लोग कहाँ से आ रहे हैं?"

"हाँ, देखो तो—हम लोगों ने गवर्नमेंट पर ज़ोर डालकर उन कुत्तों के जहाज़ों को तीन दिन से खाड़ी में रुकवा रखा था। आज उन्हें

बन्दरगाह पर आने की इजाज़त आख़िर मिल ही गई।···"

"मिल गई?"

"हाँ जी, गवर्नमेंट अब हमारी बात नहीं सुनती, हमें शासन-सूत्र अब शीघ्र ही अपने हाथ में लेना होगा।···ख़ैर, यह बाद की बात है।—अब, हम लोगों ने इस बात पर विचार करने के लिए एक सभा की थी कि हमें क्या करना चाहिए!"

"अच्छा!"

"हाँ, मिस्टर एस्कम्ब प्रेसीडेण्ट थे। ताज्जुब की बात है कि आज वे भी फिरण्ट हो गये।—"

"कैसे?"

"वे शुरू से हमारे पक्ष में थे और हिन्दुस्तानियों को वापिस भेजने के आन्दोलन में उन्होंने हमें सबसे ज्यादा उत्साह दिलाया था, मगर जब आज गवर्नमेंट ने जहाज़ों को किनारे लगाने की आज्ञा दे दी और हम लोगों ने जबर्दस्ती करने का इरादा जाहिर किया तो वे हमारे काम और इरादे को ग़ैरक़ानूनी और अनुचित बताकर हट गए!—छीः कैसे-कैसे आदमी हैं!"

मिस्टर हर्बर्ट ने पूछा—"तो अब क्या इरादा है?"

"इरादा?" टामसन ने कहा—"हम गांधी को मार डालना चाहते हैं!"

"मार डालना—एकदम?"

"हाँ जी, मार डालना; क्यों, क्या डर गए?—अरे, शिकार को मारते हुए भी डरते हो क्या?—अच्छा तुम जा सकते हो।"

कहकर टामसन ने उपेक्षा-पूर्वक हाथ से जाने का संकेत किया।

हर्बर्ट ने सिटपिटा कर कहा—"ओह! डरता नहीं हूँ दोस्त; मगर बताओ तो—किस तरह मारोगे?"

"किस तरह?"

"हाँ, जब वह घर चला जायगा, तब? या बन्दरगाह पर ही

समुद्र से ढकेल दोगे ?"

"नहीं, समुद्र में नहीं ढकेलेंगे। पहले हमने जहाज़ से मुसाफ़िरों को नोटिस भेजा था कि हम ऐसा करेंगे, परन्तु गवर्नमेंट ने पहरे का प्रबन्ध कर दिया है। ऐसा न हो सकेगा।—और घर पर ही मौका लगे-न-लगे।"

"फिर ?"

"रास्ते में मारेंगे !"

"अरे !" मि० हर्बर्ट ने चिहुँक कर कहा—"सरे आम एक आदमी का खून करोगे ?"

"क्यों फिर डर गए ?"—अब की बार दुर्दान्त टामसन के नेत्रों में सख्त अलामत थी।

हर्बर्ट फिर सिटपिटाया। बोला—"नहीं, मेरा मतलब है, अगर वह बन्द गाड़ी में आया, या दो-चार आदमियों के साथ आया, या रात में आया तो किस तरह मारोगे ?"—

"अरे, वह भी हो गया है!" टामसन ने हँसते हुए कहा—"मिस्टर एस्कम्ब ने गांधी को कहला भेजा था कि रात में उतरना।—और शायद गांधी रात में ही उतरता; मगर अभी-अभी मिस्टर लाटन उसके पास गये हैं। वे उसे अभी उतार कर लायँगे। हमने सोचा है—हम उसे तभी मार डालेंगे !"

"क्या पिस्तौल से ?—अरे ख़तरनाक काम है !"

टामसन ने होठ मरोड़ कर तेज़ी से कहा—"कायर !—जा !!"

"ओह !—नहीं दोस्त, यह कहता हूँ मि० लाटन की जान का भी ख़तरा हो सकता है; साथ होंगे न ?"

"ओह ! व्यर्थ की बहस करते हो—मि० लाटन को हम अलग हटा लेंगे।—अगर डरते हो तो जाओ; अगर नहीं, तो गाड़ी को रवाना कर दो, हमारे साथ आओ।"

—कहकर टामसन अपने साथियों सहित आगे बढ़ा।

गाड़ी रवाना हो गई और हैट और ओवरकोट उतार कर हर्बर्ट इस गुट में शामिल हो गया।

(३)

मि० लाटन दादा अब्दुला के वकील हैं और गांधी के मित्र भी। जब तक जहाज़ रुके खड़े रहे, इन्होंने यद्यपि अपनी मित्रता और सदाशयता का कोई परिचय नहीं दिया, परन्तु अब जाने कहाँ का प्रेम उमड़ पड़ा कि वे जहाज पर गांधीजी से मिलने आये।

आते ही आपने कहा—"हल्लो, मि० गांधी, बधाई!"

गांधीजी ने उनको धन्यवाद दिया।

मि० लाटन ने कहा—"दो-तीन दिन से मैं बड़ा चिन्तित था। सोचता था—आप लोगों को न उतरने दिया गया तो बड़ा अनुचित होगा। सचमुच आपको यहाँ उतरने का कानूनन् हक़ है!"

गांधीजी ने मुस्कराकर कहा—"मैं सदा न्याय और औचित्य का पक्ष लेता हूँ। खुशी की बात है, आप भी मेरे हम ख़याल हैं।"

"हरेक युक्तिपूर्ण मनुष्य आपका हम-ख़याल होगा!"—मि० लाटन ने कहा—"मगर अब उतरिए न, देर क्या है?"

गांधीजी ने मि० एस्कम्ब का एक पत्र पाया है। उसे पढ़कर वे विचार में पड़ गए हैं। उसमें उन्होंने अनुरोध किया है—कि वे शाम तक जहाज से न उतरें। गोरे उनके ख़िलाफ़ भड़के हुए हैं। शाम को बन्दरगाह के सुपरिंटेन्डेण्ट आकर उन्हें ले जायँगे।

मि० लाटन के उत्तर में गांधीजी ने यह पत्र उनकी हथेली पर रख दिया।

मि० लाटन एक नज़र से उस पत्र को पढ़ गए और आख़िर तक पहुँच कर हँसकर बोल उठे—"अच्छा! मि० एस्कम्ब हैं!"

"जी हाँ," गांधीजी ने कहा।

"तो क्या आप शाम से पहले उतरने का विचार नहीं रखते?"

"यही सोच रहा हूँ।"

"छीः!—आप डरते हैं?"

"न, डरता इतना नहीं हूँ," गांधीजी गम्भीर होकर बोले—"मैं सोचता हूँ मि० एस्कम्ब के स्नेहपूर्ण आग्रह को मुझे मानना चाहिए या नहीं। स्त्री-बच्चों को मैं पारसी रुस्तमजी के यहाँ भेज चुका हूँ।—अब मैं इसी विचार में पड़ा हूँ······"

"ओह!—आप बड़े भोले हैं!" मि० लाटन ने मुँह बनाकर कहा—"मि० एस्कम्ब की बात पर आप यक़ीन करते हैं?"—फिर अर्द्ध-सम्बोधित स्वर में बोले—"रात को आना!—अकेले आना!—और सबको उतर जाने दो!—वाह वा! मि० गांधी, आप देखिए तो—इन तीन वाक्यों में से कैसा कुत्सित षड्यन्त्र झाँक रहा है!"

गांधीजी ने कहा—"सदुद्देश्य से भी लिखा जा सकता है!"

"हाँ, मानता हूँ; लिखा जा सकता है!" मि० लाटन ने अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी तीन बार बाईं हथेली पर मारकर कहा—"मगर मि० एस्कम्ब!—राम! राम! उनका विश्वास आपने किस सबूत पर किया? उन्होंने आपके साथ कौन-सी भलाई की है? और आप यह तो जानते ही हैं कि जिस कमेटी के नोटिस आपको और अन्य जहाज़ वालों को मिले हैं, उसके अध्यक्ष मि० एस्कम्ब ही हैं, और नेटाल के गोरों को उत्तेजित करने का श्रेय इन्हीं महापुरुष को है!!"

"सब जानता हूँ, मि० लाटन!" गांधीजी ने गर्दन नीची कर अपने स्वाभाविक मीठे, गम्भीर और नम्र स्वर में कहा—"मगर देखिए आदमी के विचार सदा एकसे नहीं रहते।—"

"ख़ैर!" मि० लाटन ने कुछ उपेक्षापूर्ण स्वर में कहा—"मैं बहस में पड़ना नहीं चाहता। आपकी समझ में आवे सो कीजिए। मगर मेरी राय में रात को कदापि न उतरिए। मैं आपका मित्र हूँ। इसी हैसियत से मैं आपको मि० एस्कम्ब की सलाह मानने की राय कभी न दूँगा। हाँ, अगर आप इस वक्त उतरते डरते हैं तो यह उचित होगा

कि आप आज रात में न उतरकर कल सुबह उतरें।"

जहाज़ में बैठे-बैठे मुद्दत हो गई थी और मि० लाटन की बातें कुछ ऐसी आकर्षक, सहानुभूति-पूर्ण, युक्ति-युक्त मालूम पड़ती थीं, कि भोले-भाले, सच्चे गांधीजी को उनका विश्वास करते अधिक देर न लगी। बोले—"ख़ैर, मैं मि० एस्कम्ब की नीयत में सन्देह न कर, सज्जनता का एहसान मानता हूँ और आपकी बात पर भी विश्वास करता हूँ—"

"हाँ तो—" मि० लाटन ने जल्दी से कहा—"अगर आप मुझ पर विश्वास करके हैं तो यह मेरा परम सौभाग्य है। गोरे सब तितर-बितर हो गए हैं। अगर कुछ हुए भी तो मैं वचन देता हूँ कि मेरे रहते कोई आपका बाल-बाँका न कर सकेगा। कहिए, क्या विचार है?"

गांधीजी ने भोले बच्चों की तरह उत्तर दिया—"तब तो मैं आप-के साथ ही चलना उचित समझूँगा।"

"धन्यवाद!"—मि० लाटन ने कहा—"और देखिए—इस वक्त न उतरें और चोरों की तरह रात बिरात में जाएँ तो इससे आपकी ही नहीं, समस्त भारतीयों की प्रतिष्ठा में कलंक लगता है। जब क़ानूनन् आपको उतरने का हक़ है और गवर्नमेंट ने उसे मान लिया है तो जान की भी पर्वाह न कर आपको खुले-आम जाना चाहिए।—इसके लिए आप पर आपत्ति भी आवे तो पर्वाह नहीं करनी चाहिए।"

गांधी जी ने जल्दी से कहा—"न, न, वह बात नहीं; मैं सोच रहा था, अगर अभी उतर जाऊँ और मि० एस्कम्ब की बात न मानूँ तो उनके साथ अन्याय तो न होगा, या मैं अपनी आत्मा को धोखा तो न दूँगा।—अच्छा, मैं पगड़ी पहनकर अभी आया!—ठहरिए!"

(४)

मिस्टर लाटन के साथ गांधीजी उतरने लगे तो कप्तान ने आकर कहा—"महाशय, मि० एस्कम्ब का एक पत्र मुझे मिला है, जिसमें

उन्होंने अनुरोध किया है कि मैं आपसे शाम तक न उतरने की प्रार्थना करूँ।"

"क्यों?"

"शहर के गोरे आपके विरुद्ध भड़के हुए हैं। शाम को बन्दरगाह के सुपरिन्टेन्डेण्ट मि० टैटम आयेंगे और आपको अपने साथ ले जायेंगे।"

गांधीजी ने भोलेपन से मि० लाटन की ओर संकेत करके कहा—"और ये जो हैं!"

कप्तान ने एक बार मि० लाटन की ओर देखा और चुप रह गया।

मि० लाटन ने कहा—"कप्तान, मि० एस्कम्ब ने जितना डर दिखाया है, हकीक़त में उतना है नहीं। गोरे सब तितर-बितर हो गए हैं, इनको उतरने की आज्ञा कानूनन् मिल चुकी है। ऐसी स्थिति में तुम इन्हें रात में उतरने की सलाह क्यों देते हो?"

कप्तान ने कहा—"ख़ैर, मैं अपना कर्त्तव्य-पालन कर चुका।—अब आप जानें, ये जानें।"

दोनों आदमी बाहर आये। गांधीजी बोले—"क्यों न एक गाड़ी ले लें?"

"ओह!—चलिए," मि० लाटन ने कहा—"है कितनी दूर?—अब पहुँचे।—और जहाज़ में बैठे-बैठे तो आप थक भी गए होंगे, चलिए, थोड़ी दूर पैदल ही चलें!"

निष्कपट गांधीजी को क्या उज़्र?—"चलिए!"

गांधीजी की पगड़ी नेटाल-भर में प्रख्यात है। बच्चा-बच्चा उनकी पगड़ी को पहचानता है। बन्दरगाह से पाँच-सौ कदम आगे बढ़े थे कि एक अख़बार बेचनेवाला लड़का ज़ोर से चिल्ला उठा—"अरे गांधी! गांधी!!"

—कुछ और आवारा लड़के वहाँ फिर रहे थे। अख़बार वाले छोकड़े की देखा-देखी वे भी सब-के-सब चिल्ला पड़े—"अरे, गांधी! गांधी!!"

मि० लाटन ने धीरे से कहा—"यह तो गड़बड़ हुआ जाता है !"

गांधीजी ने हँसकर कहा—"चलिए ! चलिए !!"

कुछ दूर आगे बढ़े। लड़कों का झुण्ड पीछे-पीछे "गांधी ! गांधी !!" चिल्लाता चला आता था। इतने में कुछ समुद्री कुली और निम्न श्रेणी के व्यक्ति आते दिखाई दिए। उन्होंने यह तमाशा देखा तो खुद भी लड़कों के झुण्ड में मिलकर "गांधी ! गांधी !!—मारो ! मारो !!" चिल्लाने लगे।

मि० लाटन ने गांधी जी के कान में कहा—"मामला बढ़ता जा रहा है, आइये इस तरफ़ से हो लें।"

संकेत एक छोटी और सुनसान सड़क की तरफ़ था।

पीछे आने वाली भीड़ तो बेशक छुट गई, और गांधीजी के मन की उद्विग्नता भी कुछ घट चली थी कि सहसा······

पास की गली में से "गांधी ! गांधी !!—पकड़ लो ! मार दो !! जाने न पावे !!!"—इत्यादि चिल्लाते हुए बहुत से गोरों का झुण्ड निकल आया।

गांधीजी ने चौंककर एक बार उधर देखा और तब उसी पहले जैसे निर्विकार भाव से चलते रहे।

अचानक उनकी दाईं कलाई पर कोई चीज़ लगी। देखा—छीः ! छीः !! एक अण्डे का सड़ा हुआ चेप उनकी कलाई में लगा हुआ था !

इधर गांधीजी रूमाल निकाल कर चेप साफ़ करने लगे, उधर उन पीड़ा करने वाले गोरों के झुण्ड में ज़ोर का एक ठहाका पड़ा !

मि० लाटन ने गांधीजी के कान में कहा—"मि० गांधी, भाग चलें तो कैसा ?"

"भाग चलें ?" गांधीजी ने सूखी हँसी हँसकर कहा—"क्यों भागें ?—जान जाने से इतना डर ?—ज़रूर कभी न-कभी मेरे ये भूले हुए भाई अपनी ग़लती समझकर उस पर पश्चात्ताप करेंगे।"

मि० लाटन मर्माहत हो गए। ओफ़ ! मनुष्य है कि देवता !! ग़ज़ब

हुआ !! बुरा हुआ !!

उन्होंने क्षण-भर स्थिर नेत्रों से गांधीजी के तेजपूर्ण निर्विकार मुख की ओर देखा, और तब माथे पर हाथ मारकर बड़बड़ाए—"ओ मरि-यम !—मैंने क्या किया !!"

—और तब घबराकर उन्होंने गोरों की तरफ़ रुख़ किया और दोनों हाथ उठाकर कहा—"भाइयो !—"

गोरों ने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना शुरू कर दिया—"गांधी को मार डालो ! गांधी को मार डालो !!"

मि० टामसन ने फिर एक बार कोशिश की। मगर अब कौन सुनता है ?

तब उन्होंने इधर-उधर देखा। देखा—सामने से एक हब्शी खाली रिक्शा लिये चला आता है। हाथ के संकेत से उन्होंने उसे बुलाया।

रिक्शावाला डरता-डरता बढ़ा। सहसा दो गोरे उछलकर उसके पास पहुँचे और ज़ोर से एक-एक तमाचा उसके मुँह पर मारकर बोले —"जा, भाग जा, सूअर ! वर्ना याद रख, अभी तेरी गाड़ी तोड़ डालेंगे !"

मि० लाटन ने कहा—"अरे, चल इधर; डर नहीं।"

परन्तु रिक्शावाला तमाचा खाने से आगे कुछ सहना नहीं चाहता था, बेचारा गाल सहलाता हुआ चलता बना।

मि० लाटन ने निरुपाय दृष्टि से एक बार गांधीजी की ओर देखा और एक बार फिर दोनों हाथ उठाकर गोरों को शान्त करने की कोशिश की। उन्होंने कहा—"भाइयो—!"

परन्तु इस 'भाइयो—!' के आगे उनके मुँह से कोई शब्द न निकल पाया था कि दो बलिष्ठ गोरे उन्हें अचूक उठाकर न जाने किधर गायब हो गये।

अब अकेले गांधीजी निरुपाय, निस्सहाय, उस परदेश में, निर्जन सड़क पर, अपनी जान के दुश्मन सैकड़ों दुर्दान्त गोरों के बीच में खड़े

रह गये !!

चारों तरफ से ईंटों, पत्थरों और ढेलों की बौछार उन पर होने लगी। एक गोरे ने उछलकर उनकी पगड़ी फेंक दी, और सारे गोरे खिलखिलाकर हँस पड़े।

गांधीजी के हाथ-पैर पत्थर की चोट खा-खाकर लोहू-लुहान हो गये, चेहरा क्षत-विक्षत हो गया, कपड़े फट गए, और शरीर शिथिल होने लगा।

इतने में शैतान टामसन का लम्बा-चौड़ा शरीर गांधीजी के बिल्कुल समीप प्रकट हुआ। उसने गांधीजी के सिर के बाल कसकर पकड़े, और नल की टोंटी की तरह उनका मुँह अपनी तरफ़ घुमाकर कहा, "क्यों बे गांधी कुत्ते ! हमसे लड़ेगा ?—"

कहते-कहते उसने दाँत पीसकर जोर-से एक तमाँचा उनके मुँह पर जड़ दिया, और फिर पूरी ताक़त से एक लात उनकी कमर में जमाई।

दुर्बल-शरीर गांधीजी की आँखों के आगे अँधेरा छा गया, और वे तिलमिलाकर नीचे गिर ही रहे थे, कि एक मकान की जाली उनके हाथ आ गई। उन्होंने समझ लिया—कि अब जीता घर पहुँचना मेरे लिये असम्भव है !

—और दया और क्षमा के अवतार उस महापुरुष ने मन-ही-मन परमात्मा से प्रार्थना की—कि वह इन भूले भाइयों का अपराध क्षमा कर दे।

परमात्मा के नाम लेते हुए, गिरते-पड़ते, निस्सहाय गांधीजी आगे-आगे जा रहे थे, और सैकड़ों बिफरे हुए, नर-पशु गोरे पीछे-पीछे। उस समय का दृश्य देखकर पत्थर-हृदय भी पसीज उठता !—ओफ् ! नृशंसता की पराकाष्ठा ! पशुता की चरम सीमा !!—कोई बताये, रोम के नीरो, फ्रांस के लुई, और रूस के ज़ार के ज़ुल्म की इसके सामने क्या बिसात थी ?—कोई बताये, ईसा-मसीह के पैरोकार गोरों की दया

उस समय किस खेत में चरने चली गई थी ?—कोई बताए, किस देश के इतिहास में एक निर्बल शरीर, निस्सहाय, निरपराध व्यक्ति पर इस प्रकार ग़ैर-क़ानूनी अनुचित, नृशंस और मनुष्यताहीन आक्रमण हुआ था !!!

ईश्वर की माया !—पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० अलेग्ज़ैनडर की पत्नी सामने से जा रही थी। गांधीजी को वह पहचानती थी। उन्हें इस दशा में देख, उसके मन में स्त्री-सुलभ सहानुभूति और करुणा का उद्रेक हो आया; और वह गांधीजी के पास आ, अपना छाता उनके ऊपर तान, उनके साथ-साथ बातें करती चलने लगी।

एक गोरे ने चिल्लाकर कहा—"हट जाओ, मैडम, इस कुत्ते के साथ न रहो ! हम इसे मार डालेंगे !"

दूसरे ने कहा—"हम इसकी लाश के टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे !"

तीसरे ने कहा—"हम इसे आठ सौ कुत्तों को चढ़ाकर लाने का मज़ा चखायेंगे।"

पर मिसेस अलेग्ज़ैनडर ने न तो इन बकवादों पर ध्यान दिया, और न वहाँ से हटी-ही।

चलते-चलते मिसेस अलेग्ज़ैनडर ने पूछा—"आपने अकेले जहाज़ से उतरने का साहस कैसे किया ? क्या आपको नेटाल के वायु-मण्डल की सूचना नहीं मिली थी !"

"मिली थी।" गांधीजी ने कहा—"मि० एस्कम्ब ने मुझे पत्र लिखकर पहले ही सूचित कर दिया था, और सलाह दी थी कि मैं रात को मि० टैटम के साथ चलूँ—"

"फिर ?"

"मि० लाटन—मेरे मित्र—वहाँ गए, और विश्वास दिलाया—कि गोरे तितर-बितर हो गए हैं। मैं अपनी ज़िम्मेवारी पर आपको साथ ले चलता हूँ, और वायदा करता हूँ कि मेरे रहते आप पर कोई आँच न आने पाएगी।"

"तो यों कहो, सारे विष के बीज मि० लाटन के बोये, और उन्हीं के विश्वासघात से—"

गांधीजी ने चौंककर कहा "न ! न ! विश्वासघात क्यों ?"

"फिर क्या ?"

"देखिए, उन्होंने जो वचन दिया था उसको अक्षरशः पूरा किया। जब तक वे मेरे साथ रहे, मेरा बाल बाँका न होने दिया, मगर जब दो गोरे उन्हें आकर ले गए, तो वे मेरे ऊपर हुए प्रहारों के लिए ज़िम्मेदार क्यों ठहराये जायँ ? बल्कि मैं नहीं कह सकता—मेरे कारण उन्हें क्या तकलीफ़ उठानी पड़ी !"

मिसेस अलेग्ज़ैनडर ने श्रद्धालु नेत्रों से एक बार गांधीजी को देखा, और सहसा उनके मुँह से निकल पड़ा—"यह क्या ? मसीह ने जन्म ग्रहण किया है ?"

उनकी बात सुनकर इस परिस्थिति में भी गांधीजी खिलखिलाकर हँस पड़े।

फिर, एक भारतीय द्वारा इस दुर्घटना की सूचना पुलिस-कोतवाल मि० अलेग्ज़ैनडर के पास पहुँच गई और पुलिस का एक दस्ता उन्होंने गांधीजी के रक्षार्थ भेज दिया।

पुलिस के घेरे में गांधीजी धीरे-धीरे दिये-बले के बाद पारसी रुस्तमजी के बँगले पर पहुँच गए।

(५)

डाक्टर ने गांधीजी के लहू-लुहान शरीर की जाँच की। अंग-अंग ज़ख़्मी हो रहा था।—और कमर की लात !—बस, उसकी न पूछिए—कष्ट के मारे प्राण ओठों तक आ रहे थे। इतने आदमी मौजूद थे !—तो भी वे असह्य कष्ट से विह्वल होकर एक बार ज़ोर-से कराह उठे; शिष्टाचार की रक्षा यहाँ उनसे न हो सकी।

बारहाल···किसी तरह मरहम पट्टी हुई, और गांधीजी एक आराम-

कुर्सी पर बैठकर धीरे-धीरे बातें करने लगे।

अधिक देर न बीती थी कि एक नौकर आकर बोला—"एक आदमी आपसे मिलना चाहता है।"

गांधीजी ने उसे बुलाया। बड़ा-सा पगड़ बाँधे, मुसलमान व्यापारी मालूम होता था, उसने टूटी-फूटी हिन्दी में कहा—"आपसे दो मिनट एकान्त में मिलना चाहता हूँ।"

लोग उठकर दूसरे कमरे में जाने को तैयार हुए, पर सहसा गांधीजी खुद खड़े हो गए, और बोले—"न, न, आप सब लोग क्यों कष्ट करते हैं? मैं अभी आता हूँ!"

—कहकर गांधीजी लोगों के रोकते-रोकते उठकर बाहर चले गए।

उस आदमी ने एकान्त में जाकर कहा—"देखिए, मेरा नाम 'हैमण्ड' है, मुझे मि० अलेग्ज़ैनडर ने भेजा है,—पहले यह देखिए—"

—कहकर उसने खिड़की के रास्ते सड़क पर का दृश्य दिखाया।

गांधीजी ने देखा—सैकड़ों उत्तेजित गोरों की भीड़ जमा है, और बीचोंबीच मि० अलेग्ज़ैनडर खड़े होकर कुछ बोल रहे हैं।

हैमण्ड ने कहा—"देखिये, ये लोग पारसी रुस्तमजी के मकान को आग लगा देना चाहते हैं, मि० अलेग्ज़ैनडर ने मुझे आपके पास इसलिये भेजा है कि अगर आप अपने मित्र और उसके बाल-बच्चों की तथा खुद अपनी ख़ैर चाहते हैं तो आप मेरे साथ इसी वक्त नीचे गोदाम में से होकर एक हिन्दुस्तानी-सिपाही के वेश में निकल चलें। गली के मुहाने पर गाड़ी तैयार है। भीड़ बे-क़ाबू होती जा रही है।—अगर आपने ज़रा-सी भी देर की—तो यह मकान, और इसके सारे निवासी ग़ारत हो जायँगे। कहिये, आप मुझ पर विश्वास तो करते हैं?"

गांधीजी ने कहा—"भाई, तुम पर तो मैं विश्वास करता हूँ—परन्तु एक बात मेरी समझ में नहीं आती।"

"क्या?"

"अगर मैं यहाँ से चला जाऊँ—और गोरों ने प्रिय रुस्तमजी को

किसी प्रकार की हानि पहुँचाई—तो मैं बड़ा स्वार्थी होऊँगा। अगर मैं अपने मित्र की कुछ सहायता न कर सकूँ—तो कम-से-कम अन्त तक उनके साथ तो रहूँ।"

कर्मचारी 'हैमण्ड' ने जल्दी से कहा—"इसकी तर्कीब कोतवाल साहब ने सोच ली है।"

"क्या?"

"जब आप चले जायँगे, तो भीड़ से कहेंगे कि क़ानून के रक्षार्थ गांधी को उन्होंने इस प्रकार चोरी से और जगह भेज दिया है, और अगर वे (गोरे) इस बात पर विश्वास न करें—तो तीन-चार आदमी भीतर मकान में जाकर उन्हें देख सकते हैं।—अगर गांधी मिल जाय, तो उसे पकड़ लें, वर्ना भले आदमियों की तरह चले जायँ। उन्हें उम्मीद है कि इस कौशल से सरे-दस्त उपद्रव शान्त हो जायगा।"

बात ठीक थी, और गांधीजी की समझ में आ गई, उसी समय 'हैमण्ड' से सिपाही की पोशाक माँगकर उन्होंने पहनी, और अपने ज़ख्मों की कुछ परवाह न कर, उसके साथ निकल चले।

गोदाम में से होकर, ये लोग बाहर आए, और भीड़ के पास से गुज़रकर पुलिस-चौकी की तरफ़ चले। उस भीड़ को भला क्या पता—उनका लक्ष्य उनकी बगल से गुज़रकर जा रहा है! वे तो मि० अलेग्ज़ैनडर का नमकीन लेक्चर और चटपटी कविता सुनने में व्यस्त थे।

मि० अलेग्ज़ैनडर उन्हें अपना अनर्गल भाषण सुना रहे थे—

"देवियों और सज्जनो!...न, न सज्जनो! (ठहाका) इस गाँधी ने बड़ा भारी गुनाह किया है! हज़ारों हिन्दुस्तानियों को लाकर उसने दक्षिण अफ्रीका पर क़ब्ज़ा जमाने की सोची है। मगर हम इस चूहे को कभी ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे। क्यों आपका क्या इरादा है?"

चारों तरफ़ से आवाज़ आई—"नहीं, कभी नहीं!"

तब कोतवाल अपनी कविता सुनाने लगे—

"आओ भाई, उस गांधी को आज पकड़कर लायें,
लाकर झटपट इसी पेड़ से, फांसी पर लटकायें।
नौ सौ हिन्दुस्तानी लाया, पाप किया है भारी,
मार-मार कर चांद फोड़ दें, शेख़ी भूले सारी।"

साथ ही चारों तरफ़ से "हियर! हियर!!" और "वन्स मोर!" की आवाज़ें आने लगीं।

पर जब गाँधीजी के सकुशल पुलिस-चौकी पर पहुँचने का समाचार कोतवाल साहब को मिला, तो उन्होंने अपनी चालाकी का हाल हँसते-हँसते गोरों की भीड़ में सुना दिया।

फिर उसी कौशल से जो हैमण्ड ने गाँधीजी को बताया था, हारकर, दाँत पीसते-पीसते सब गोरे विदा हो गये।

(६)

गाँधीजी पर इस अपमान-पूर्ण मार की ख़बर भारतवर्ष में पहुँची; और वहाँ इस ख़बर ने आग-सी लगा दी, और यह एक राष्ट्रीय प्रश्न बन गया। अख़बारों में टिप्पणियाँ निकलीं, लेक्चर हुए, और सभाओं में प्रस्ताव पास हुए।

तब भारत के तत्कालीन वायसराय चेम्बरलेन ने भारतीयों के आँसू पोंछने के लिए नेटाल-सरकार के पास तार भेजा कि गाँधीजी को न्याय मिले, और उन पर हमला करने वालों पर मामला चलाया जाय!"

पर उन दया के अवतार, क्षमाशील, महापुरुष गाँधीजी ने क्या किया? क्या आप यह सुनकर अपने कान पवित्र न करेंगे?

आप पढ़ चुके हैं—मि० एस्कम्ब न्याय-विभाग के मन्त्री थे। उन्होंने गाँधीजी को बुलवाकर मि० चेम्बरलेन का तार उन्हें दिखाया, और बोले, "आप पर जो नृशंस हमला हुआ है, मैं उसके लिए दुःख

और लज्जा का अनुभव करता हूँ। खुशी की बात है कि आपकी जान पर जोखम नहीं आई। मगर विश्वास करिये, मेरे मन में स्वप्न में भी यह धारणा या इच्छा नहीं हुई कि आपको या आपके देश-वासियों को ज़रा भी चोट पहुँचे। मैंने पहले ही डरकर आपसे रात को उतरने के लिए कहला भेजा था। मगर मि० लाटन के कहने से आप न माने—"

"ओह! नहीं," गाँधीजी ने कहा, "उसकी जिम्मेवारी मुझ पर है, मि० लाटन का कोई दोष नहीं!"

"खैर, यही सही" मि० एस्कम्ब ने कहा—"हम मि० चेम्बरलेन का अनुरोध मानते हैं और उचित समझते हैं कि हमलावरों पर मुक-दमा चलाया जाय। कहिये आप आक्रमणकारियों को पहचान भी सकेंगे?"

"शायद दो-चार को पहचान लूँ!" गाँधीजी ने जल्दी से कहा—"मगर देखिये न, मैं आक्रमणकारियों को ज़रा भी दोषी नहीं मानता।"

"दोषी नहीं मानते?" एस्कम्ब ने साश्चर्य कहा—"तो फिर···? आपका मतलब क्या है?"

"मतलब यह—" गाँधी जी बोले, "कि दोषी गोरों की वह कमेटी है जिसने उन लोगों को उत्तेजित किया, और क्षमा कीजिये, उनसे भी अधिक दोषी आप हैं जो उस कमेटी के अध्यक्ष थे, और जिन्होंने मेरे विषय में जान-बूझकर भ्रम फैलाया।"

मि० एस्कम्ब सिटपिटा गये, और सूखे मुँह से मुस्कराकर बोले—"तो इसके माने हैं आप मुझ पर मुकदमा चलाना चाहते हैं?"

"ना! वह बात नहीं," गाँधीजी ने कहा—"जब मैं जहाज़ से उतरा था, तो निश्चय कर लिया था कि अगर मुझ पर हमला हुआ तो मैं बुरा न मानूँगा। बस, अब भी मैं अपने उस निश्चय पर अटल हूँ!"

मि० एस्कम्ब के मुँह से आश्चर्य की एक चीख निकल गई और

उन्होंने पूछा, "क्या मतलब ?"

"यानी," गाँधीजी बोले—"मैं किसी पर मुकदमा चलाना नहीं चाहता। अगर आक्रमणकारियों ने सचमुच कोई पाप या अनुचित कर्म किया है तो मेरा विश्वास है वे आगे-पीछे ज़रूर अपनी भूल पर पछतायेंगे। और यही उनके अपराध का समुचित दण्ड होगा।"

मि० एस्कम्ब ने सहसा गाँधीजी का कन्धा पकड़कर कहा—"माँ, मेरियम ! यह कौन है।"

—फिर मिनट-भर उसी तरह उनकी तरफ़ ताकते रहकर मि० एस्कम्ब बोले—"क्या आप मुझे इस मज़मून का एक पत्र लिखकर दे सकते हैं कि आप हमलावरों पर मुक़दमा चलाना नहीं चाहते, ताकि मैं उसे मि० चेम्बरलेन के पास भेज दूँ ?"

"अवश्य, अभी लीजिये !" कहकर गाँधीजी ने फ़ौरन् पत्र लिख दिया।

मि० एस्कम्ब के मुँह से निकल पड़ा—"ईश्वर करे तुम्हें सफलता हो।"

याद रहे, ये गाँधीजी के कट्टर विरोधी के शब्द थे !!

दो

(१)

पहले खण्ड की दुर्घटना के दो वर्ष बाद, जोहान्सबर्ग की सँकरी गली का एक अँधेरा घर।

घर बाहर से जितना गन्दा, पुराना और ख़राब दिखाई देता है, भीतर से उतना ही कुशाद, साफ़ और आलीशान है। कमरे बड़े, छतें ऊँची, दीवारें साफ़, खुला हुआ चौक—यही मकान की ख़ूबियाँ थीं।

एक बड़े कमरे में रोशनी हो रही थी; बाकी सारा मकान घुप्प-अँधेरे में छिपा हुआ था। इस प्रकाशित कमरे में एक बहुत बड़ी गोल टेबुल के चारों तरफ़ पन्द्रह आदमी कुर्सियों पर बैठे थे।

इन में से तीन हिन्दुस्तानी थे, बाकी सब गोरे। हाँ, गोरों में से हम दो आदमियों को पहचान सकते हैं—एक टामसन, दूसरा हर्बर्ट।

इस गुप्त-समिति का परिचय देने के लिए कुछ कह दें—

जोहान्सबर्ग में सन् १८९९ तक बोअर-राज्य था। परन्तु यहाँ की सोने की खानों के मालिक अंग्रेज़ थे, और वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि कोई विदेशी-सरकार उन पर शासन करे। बस, इन्होंने डाक्टर जेमीसन के साथ षड्यन्त्र किया और उन्हें एक ख़ास तिथि पर

जोहान्सबर्ग पर धावा बोल देने के लिए तैयार किया। और यह तय हुआ कि जिस दिन डाक्टर जेमीसन जोहान्सबर्ग पर चढ़ाई करें, उसी दिन भीतर, शहर में, खानों के अंग्रेज़ मालिकों के द्वारा विद्रोह कर दिया जाय।

जोहान्सबर्ग में भारतीयों की भी काफ़ी संख्या थी। अंग्रेज़ लोग 'मतलब के लिए गधे को बाप' बनाने में कभी नहीं चूकते, अतएव उन्हें डर हुआ कहीं भारतीय हमारे विद्रोह का विरोध न करें! बस, उन्होंने भारतीयों के कुछ मुखियाओं को अपने साथ मिलाया।

आज इन लोगों ने इसी सम्बन्ध में मशविरा करके के लिए, समिति की अन्तिम बैठक बुलाई है।

मि० हर्बर्ट ने खड़े होकर कहना शुरू किया—"आज हम लोग किस लिए इकट्ठे हुए हैं? इसलिए कि अपना आगामी दो दिनों का कार्य-क्रम स्थिर करें। क्योंकि परसों डाक्टर जेमीसन जोहान्सबर्ग पर धावा बोल देंगे।"

क्षण-भर ठहरकर फिर बोला—"बोअरों के शासन में हम पर जो नित्य नई विपत्तियाँ आती हैं, और हमें जो असुविधायें हैं, वे आप लोगों से छिपी नहीं हैं, और बार-बार आप लोगों को बताई जा चुकी हैं। हमारे भारतीय भाइयों को भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उन्हें खेती और व्यापार के लिए अच्छा स्थान नहीं मिलता, उन्हें और हमें बिना परवाने के इधर-उधर नहीं हिलने दिया जाता। सारांश, हम लोग बोअरों के राज्य में सब प्रकार तिरस्कृत और दुःखी हो रहे हैं, जो हम कभी सहन नहीं कर सकते।"

"बस, सब तैयारी हो गई है। परसों रात को डाक्टर जेमीसन अपनी सेना के साथ धावा बोलेंगे, और उसी समय हमें विद्रोह खड़ा कर देना होगा। बोअर लोग शासन की ज़रा भी योग्यता नहीं रखते, यह इससे ही सिद्ध होता है कि उनके विरुद्ध इतनी भारी तैयारी हमने कर ली है, तो भी उनके कान पर जूँ नहीं रेंगी, और वे गफ़लत

की नींद में सो रहे हैं।

"ख़ैर, सारी परिस्थिति आपके सामने है। परसों रात को हमें क्या-क्या करना है इसका कार्य-क्रम तीन आदमियों की कमेटी ने—जो आपने सभा के पिछले अधिवेशन में बनाई थी—तैयार कर लिया है, उसे अभी आपको सुनाया जायगा।—मगर इससे पहले, यहाँ उपस्थित, अपनी जाति के गण्य-मान्य नेता, अपने भारतीय भाइयों के मुँह से मैं कुछ सुनना चाहता हूँ!"

हरिभाई प्रेमजी नाम के एक गुजराती-सज्जन खड़े हुए, और बोले—"हम लोगों को जो-कुछ कहना था, पहले ही कह चुके हैं। हमारी जो कठिनाइयाँ हैं—हम बता चुके हैं। आपकी अपेक्षा हमारी कठिनाइयाँ बहुत अधिक और असह्य हैं। आपके उद्योग में सहयोग देना सब प्रकार से हमारा कर्त्तव्य है। पहले तो आपने तीन पौंड का कर, और अन्य सब आपत्तियों को हम पर से उठा देने का वचन दिया है, और व्यापार करने, आने-जाने—इत्यादि सब प्रकार की स्वतन्त्रता देने को आप प्रतिज्ञा-बद्ध हुए हैं, दूसरे, हम ब्रिटिश-प्रजा हैं, हमारी जन्म-भूमि पर अंग्रेज़ों का शासन है, उस नाते भी आपका साथ देना हमारा धर्म है। बस, अगर आप लोग अपने वचन पर दृढ़ हैं, तो हमें जो कहा जाय, उसे करने में कोई आपत्ति नहीं है।"

अब एक मोटा अंग्रेज, जिसने सोने की खानों की बदौलत करोड़ों रुपया पैदा किया था, उठा, और बोला—"मैं अपने अंग्रेज़-बन्धुओं की तरफ़ से भारतीय-भाइयों के समक्ष की गई प्रतिज्ञा को एक बार पुनः दोहराता हूँ, और विश्वास दिलाता हूँ कि ट्रान्सवाल पर ब्रिटिश राज्य होते ही उन्हें सब प्रकार की स्वतन्त्रता दे दी जायगी, और तीन पौंड का कर, परवाना लेने की अनिवार्यता, इत्यादि सब प्रतिबन्ध उठा लिए जायेंगे! तथा और भी जैसी स्वतन्त्रता वे चाहेंगे, उन्हें मिलेंगी।"

अहमदअली विलायतअली नाम के एक सज्जन ने उठकर धन्यवाद

दिया। और इसके बाद मि० हर्बर्ट की कमेटी का तैयार किया हुआ कार्यक्रम सभा में पढ़कर सुनाया गया। किस प्रकार बोअर-पहरेदारों की हत्या की जाय, किस प्रकार जेल से अंग्रेज़-क़ैदियों को मुक्त किया जाय, किस प्रकार बोअरों के सचिव-गृह पर यूनियन जैक फहराया जाय? इत्यादि-इत्यादि।

बड़ी रात तक यह सब होता रहा। जब यह सब हो चुका, तो षड्यन्त्र समिति के सदस्य एक दूसरे की शुभ-कामना करते खड़े होगये।

परन्तु हैं!—यह क्या—लोहे के मज़बूत दरवाजे की भीतर की साँकल खोली गई—तो देखा गया—दरवाज़ा बाहर से बन्द है!

इतने में बाहर से किसी ने डच-भाषा में कड़ककर कहा—"बस, सब लोग चुपचाप वहीं रहो। तुम सब बोअर-सरकार के क़ैदी हो!!"

दो-तीन कमज़ोर-दिल गोरों की लम्बी चीख़ें उस बड़े भारी कमरे की हवा में मिल गईं।

(२)

जोहान्सबर्ग के अँग्रेज़-बच्चों ने बोअर-प्रेसीडेण्ट-क्रूगर को जैसा मूर्ख समझा था, असल में वे उससे बहुत अधिक बुद्धिमान थे। गोरों के इस सारे षड्यन्त्र का पता उन्हें यथासमय लग गया था और किस तरह समिति के समस्त सभासदों को पकड़ लिया गया, वह आप पढ़ ही चुके हैं।

अब इसके बाद कैसे उन्होंने चुपचाप डा० जेमीसन के मुक़ाबले में फ़ौज भेजकर उनके दाँत खट्टे किए और उन्हें जीता पकड़ मँगाया और कैसे खानों के करोड़पति मालिकों और डा० जेमीसन पर मुकदमा चलाकर उन्हें फाँसी का दण्ड सुनाया और कैसे मि० चेम्बरलेन ने तार भेजकर इन अपराधियों की जाँ-बख्शी की भीख माँगी इन सब इतिहास-प्रसिद्ध बातों का सविस्तार वर्णन इस उपन्यास में नहीं किया जा सकता। अन्त में, मि० चेम्बरलेन की विनती स्वीकार कर, उदार और

नीतिज्ञ प्रेसीडेण्ट क्रूगर ने सब अभियुक्तों को क्षमा प्रदान करदी।

पर गोरे अपनी आदत कैसे छोड़ दें ? फिर षड्यन्त्र आरम्भ हुए, फिर चालें शुरू हुईं और फिर युद्ध के बादल मडराने लगे !

बोअर और अँग्रेज़—दोनों ही युद्ध की तैयारियाँ कर रहे थे। प्रेसीडेण्ट क्रूगर ध्यानपूर्वक सारी परिस्थिति समझ रहे थे।

—और आख़िर—

एक दिन 'पहले मारे, सो जीतें की उक्ति के अनुसार प्रेसीडेण्ट क्रूगर ने अँग्रेज़ी इलाकों को विजय करने के लिए अपनी फ़ौज आगे बढ़ा दी। उसी साल अर्थात् १८९९ में अँग्रेज़, बोअरों का यह भयानक संग्राम आरम्भ हो गया और बोअर-सेना ने अँग्रेज़ी राज्य के तीन शहरों—लेडिस्मिथ, किंबरली और मेफ़ेकिंग का मुहासरा कर लिया।

प्रसिद्ध युद्ध-विद्या-विशारद लार्ड किचनर ने बोअरों का सामना किया। कई मास तक घोर संग्राम होता रहा। बोअर-लोग जी तोड़ कर लड़े, पर अँग्रेज़ों के भाग्य का सितारा अपनी पूरी तेज़ी पर था और प्राण-पण से कोशिश करने पर भी आज़ादी के दीवाने हार गए। किंबरली, मेफ़ेकिंग और लेडिस्मिथ इत्यादि शहर तो छुड़ा लिए गए, साथ ही ट्रान्सवाल और आरेंज-फ्री-स्टेट—बोअर-राज्यों पर भी अँग्रेज़ों का यूनियन जैक फहराने लगा।

इन दिनों नेटाल के भारतीय, गाँधीजी के नेतृत्व में अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। अगर वे चाहते, तो गोरों की इस विपत्ति में उनसे चाहे जो ले सकते थे, परन्तु शान्ति और दया के अवतार गाँधीजी ने कहा—"अँग्रेज़ हमारे शत्रु नहीं हैं कि हम राजनीति की चाल चलकर उनकी मजबूरी से अनुचित लाभ उठावें। हमारा युद्ध धर्म-युद्ध है, इसलिए विपत्ति में हमें उन लोगों की सहायता करनी चाहिए—जिनकी प्रजा होने के नाते ही हम अपने हकों का मुतालबा करते हैं।"

और यह भी समझ लें कि बोअरों के सम्बन्ध में गाँधीजी के व्यक्तिगत विचार—बल्कि समस्त भारतीयों के—सहानुभूति-पूर्ण थे,

मगर गाँधीजी ने और उनके साथ-ही समस्त भारतीयों ने उनके इस तर्क को मान लिया कि "कर्त्तव्य के सामने हमें अपने व्यक्तिगत विचारों का बलिदान कर देना चाहिए।"

आज अपनी सभ्यता, गौरव और उदारता पर नाज़ करने वाले यूरोप के इतिहास में कहीं ऐसी उदारता का उदाहरण आपने देखा?

बस, गाँधीजी की प्रेरणा और उनके अध्यवसाय से ११०० भारतीयों की एक बड़ी टुकड़ी युद्ध के घायलों की सेवा-शुश्रूषा के लिए अँग्रेज़ फ़ौज के साथ चली।

उस समय उन धूर्त गोरों ने जिस प्रकार भारत की स्तुति की, उसे सुनकर हर्ष से रोमांच हो जाता है। मगर—

—काम निकल जाने के बाद, इन बेईमानों ने भोले-भाले भारतीयों को जैसा अँगूठा दिखाया, उसे देख कर, संयत-से-संयत भारतीय की नस-नस फड़कने लगती है। केवल एक ही पुरुष ऐसा था जिसने महीनों गोरों के सड़े ज़ख्म साफ़ किए, पचास-पचास मील की पैदल यात्रा की, गोले-गोलियों की बौछार में घुसकर घायलों को बचाया और जिसके कारण अँग्रेज़ों को भारतीयों की यह अमूल्य और सामयिक सहायता प्राप्त हुई थी, और जिसने गोरों की बेईमानी और विश्वासघात देखकर एक बार 'उफ़!' तक न की और फिर नये सिरे से अपने काम में जुट गया।

यह व्यक्ति महापुरुष गाँधीजी थे!!

(३)

जब अँग्रेज़ों ने बोअरों पर विजय पाई, तो गाँधीजी गोरों की कृतघ्नता की कल्पना न करके भारत चले गए। उन्होंने सोचा—भारतीयों की सेवा और सहायता-स्वरूप अवश्य उन्हें अभीष्ट अधिकारों की प्राप्ति हो जायगी, परन्तु तार पाकर उन्हें शीघ्र ही दक्षिण-अफ्रीका आना पड़ा।

देखा तो सब मामला गड़बड़ !—वे लम्बे-चौड़े वादे, वह क्षणिक और अस्थायी आदर-मान, वह कृत्रिम और दुष्टता-पूर्ण खुशामद—सभी निष्ठुरतापूर्वक भुला दी गईं थीं और विश्वासघाती, झूठे अँग्रेज़ों ने निस्सहाय, भोले-भाले भारतीयों पर अन्याय का वीभत्स कुचक्र चला रक्खा था !!

ट्रान्सवाल में भारतीयों ने अच्छी ज़मीनें ख़रीदीं, तो धूर्त और निर्लज्ज गोरों ने सन् १८८५ ई० का, बोअर-राज्य के समय का प्रतिबन्धक क़ानून सामने ला रखा और ज़मीनें रजिस्टर करने से इनकार कर दिया !

और भी सुनिए—भारतीयों के लिए ट्रान्सवाल में घुसना तभी सम्भव था, जब वे नव-निर्मित 'एशियाटिक-डिपार्टमेण्ट' से परवाना ले लें। इस 'एशियाटिक-डिपार्टमेण्ट' के कर्मचारी पूरे रिश्वतख़ोर, डाकू और अव्वल दर्जे के बदमाश थे। ग़रीब भारतीयों को सब प्रकार से दबाकर उनका रुपया लूटना ही उनका एकमात्र उद्देश्य था। शहर के भीतर व्यापार करने की बात दूर रही, जो व्यापारी वहाँ मौजूद थे, उन्हें भी निकाल बाहर करने की कोशिश की जाने लगी।

अब गांधीजी के प्रति कृतघ्न गोरों के व्यवहार की बात सुनिए। मि० चेम्बरलेन उन दिनों ट्रान्सवाल में आये हुए थे। भारतीयों के डेपूटेशन ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की, पर आपका हृदय क्या यह सुनकर विदीर्ण न हो जायगा कि ट्रान्सवाल के गोरे अधिकारियों के कुचक्र से मि० चेम्बरलेन ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया।

मगर हुआ कुछ भी नहीं ! पराए देश को रोटी समझकर भूखे कुत्तों की तरह झपटने वाले अंग्रेज़ों की मनोवृत्ति कैसी होगी?—कल्पना तो कीजिए। भला माँगने से, या प्रेम-भाव से, या दीन-भाव से इनकी लोहे की मुट्ठी खोलकर कुछ लिया जा सकता है?—ओफ़ ! असम्भव !—इस तोताचश्म, धूर्त्त, नीतिज्ञ जाति का विश्वास करना

ही अपने पैर कुल्हाड़ी मारना है !!

अधिकार तो मिलने दूर-किनार—भारतीयों को ट्रान्सवाल से बाहर खदेड़ देने के लिए एक नया आविष्कार हुआ, कि प्रवेश-पत्र के साथ प्रत्येक व्यक्ति का चित्र ले लिया जाय, ताकि उसके सिवा कोई दूसरा उसका उपयोग न कर सके।

जोहान्सबर्ग के खान-मालिकों की समिति अभी टूटी नहीं थी, मगर पहले गुप्त-समिति थी, अब एक प्राइवेट-क्लब हो गया। वे तीन भारतीय भी अभी तक उसके मेम्बर थे, मगर गोरों की आँखों में वे अब काँटे की तरह खटकते थे।

एक दिन हरिभाई प्रेमजी ने अपने दुःखों का रोना रोया, और कहा—"आप लोगों की तरफ़ से विश्वास दिलाया गया था कि ट्रान्सवाल पर विजय होते ही......"

बीच ही में एक गोरा कड़ककर बोला—"आप यह क्या झगड़ा ले बैठे! आप जानते हैं, अब यह क्लब है; कोई राजनैतिक संस्था नहीं है?"

हरिभाई ने अनमनसी से कहा—"मगर सदस्य तो सब वही हैं।"

एक और महाशय बोले—"अब हमारा शासन के सम्बन्ध में कोई मूल्य नहीं है। आप जानें, सरकार जाने!"

अहमदअली ने कहा—"मगर आप हमारी और तरह तो मदद कर सकते हैं।"

एक नौजवान गोरे ने खड़े होकर कहा—"हम तुम्हारे नौकर हैं जो मदद करते फिरें?"

तीसरे भारतीय जो अब तक चुप बैठे थे—ज़ोर से मेज़ पर हाथ मारकर खड़े हो गए, और सुर्ख़ चेहरा बनाकर बोले—"धिक्कार है!—थूफ! अब नहीं सहा जाता!!"

कहकर वे क्लब-घर से बाहर हो गए।

अब की बार उद्दण्ड टामसन खड़ा हुआ और जोर से बोला—"ये

काले हिन्दुस्तानी असभ्य हैं, बदमाश हैं; हमने इन्हें व्यर्थ क्लब-घर में आने दिया। इन्हें अभी मारकर निकाल दो!!"

हरिभाई ने सहमकर कहा—"ठहरिए"

परन्तु सहसा टामसन ने भरी हुई सोडे की बोतल उठाकर उनके माथे पर फेंक मारी, और दूसरे ही क्षण "मारो! मारो!" कहता हुआ उन पर टूट पड़ा।

—तब उस क्लब-घर में उन दर्जन-भर बलिष्ठ गोरों ने, दो निर्दोष निर्बल, निस्सहाय भारतीयों की जैसी भयानक दुर्दशा की, उसका वर्णन हमारी लेखनी से न कराइए,—अगर किया—तो हमारा भारतीय हृदय फट जायगा!—बस, यह समझ लीजिए कि गिरते-पड़ते घर पहुँचकर उन दोनों ने किसी प्रकार अपने प्राण बचाए।

परन्तु इस भयानक दुर्व्यवहार का रहस्य आज कौन जानता है? और भारतीयों के कष्ट में रहस्य भी हो सकता है इसकी कल्पना भी वहाँ कौन मदान्ध राज-कर्मचारी करता?

(४)

परन्तु शान्ति, विवेक और साधुता के अवतार उस महापुरुष ने क्या किया?—उसने कहा—"हमारे मन में कपट नहीं है, हम शान्ति के साथ रहना चाहते हैं, लड़ना-झगड़ना हमरी प्रकृति के विरुद्ध है; अतएव यदि अंग्रेज़ इसी में सन्तुष्ट होते हैं, तो हम उनके कथनानुसार परवाने लिए लेते हैं!"

—और तब उस सत्यमूर्त्ति की इस पुकार पर सारे ट्रान्सवाल-निवासियों ने गोरों की इच्छानुसार नए परवाने ले लिए।

पर गोरे तो भारतीयों की शान्ति से प्रसन्न नहीं थे। वे तो उनके क्रोध की बाट देखते थे जिससे पानी-पीते भेड़िए की तरह व्यर्थ के बहाने पर भारतीयों को बकरी के बच्चे की तरह कुचलकर फेंक दें।—अस्तु, इनका क्रोध प्रज्वलित करने के लिए उन्होंने और कुचक्र रचा।

१९०६ का साल था। ट्रान्सवाल में परवानों की रद्दोबदल होकर ही चुकी थी कि नेटाल में ज़ुलू-नामक हब्शियों ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। विद्रोह क्या—यों समझिये, अपने आत्म-सम्मान पर निरन्तर असह्य और बीभत्स धक्का वे सहन न कर सके, और प्रतिकार का उपाय सोचने लगे।

बस, निर्दयी अंग्रेज़ों ने जैसी बे-दर्दी से उन बेचारे निरस्त्र ज़ुलूओं को भूना—उसे सुनाना हमारी पुस्तक का विषय नहीं, हमें तो यह कहना है कि गाँधीजी ने ऐसी विपत्ति, और अपने ऊपर होने वाले घोर अन्याय की उपेक्षा कर, अंग्रेज़-घायलों के लिए, अपने-सहित २५ भारतीयों के एक दल की सेवाएँ पेश कीं। भला इससे कब इन्कार ?

गाँधीजी अपने साथियों-सहित छः हफ्ते तक बराबर अंग्रेज़-सेना के साथ जंगल-पहाड़ों में मारे-मारे फिरे, भूख-प्यास-नींद—सबका कष्ट सहा। वर्षा, धूप, ठण्ड—किसी की चिन्ता नहीं की, और पुरस्कार मिला—नेटाल-गवर्नर का एक धन्यवाद का तार !—

और ट्रान्सवाल में ?—

वहाँ ग़रीब भारतीयों का गला रेतने वाली एक नई छुरी पैनी की जा रही थी !!

(५)

थियेटर-हॉल खचाखच भरा था। मंच पर गाँधीजी, अब्दुलग़नी, तैयब सेठ और जोशीले सेठ हाजी हबीब थे।

श्रोताओं में सब जातियों के भारतीय थे।

गाँधीजी ने खड़े होकर कहा—"भाइयो, हम पर जो ज्यादतियाँ अब तक हुई हैं वे आपसे छिपी नहीं हैं। अब तक जो असुविधाएँ हमें थीं, वह कम नहीं थीं, पर अभी हाल में ट्रान्सवाल की धारा-सभा में एक नये क़ानून का मस्विदा पेश हुआ है, जिसके द्वारा भारतीयों

की हस्ती ही मिटा देने की तैयारी है। उस कानून का मस्विदा आपने 'इण्डियन ओपीनियन'[1] में पढ़ा ही होगा। अब हम लोग यहाँ इकट्ठे इसलिए हुए हैं कि इस अन्यायपूर्ण क़ानून के प्रतिकार का कोई उपाय सोचें। मेरा विचार है कि इस कानून को अपने ऊपर लागू होने देने के पहले तो भारतीयों का मर जाना बेहतर है। मगर सवाल तो यह है कि मरें किस तरह ?...."

श्रोताओं में से किसी ने चिल्लाकर कहा, "गोरों की हत्या करके फाँसी पर लटक जायँ !"

गांधीजी ने कड़ककर कहा—"यह कौन है ?—अगर इस बोलने वाले में लज्जा और भारतीयता का कुछ अंश शेष है, और मेरे व्यक्तित्व में सत्य का कुछ अस्तित्व है, तो वह इसी दम उठकर इस सभा-भवन से बाहर चला जाय।"

और आश्चर्य ! असह्य अपमान और लज्जा सहकर भी एक आदमी बाहर चला गया !!"

गांधीजी बोले—"दूसरे का खून बहाकर जो अधिकार या स्वतन्त्रता या राज्य की प्राप्ति की जाय, वह कभी चिरस्थायी नहीं हो सकती। अपनी आत्मा को सहनशीलता, और अपने व्यक्तित्व को शान्ति की चरम-सीमा पर पहुँचा देने में ही मैं तो अपनी विजय समझता हूँ। मेरा मत यह है कि हम इस बिल का विरोध करने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा दें, और अगर वह पास ही हो जाय, जिसकी कि आशा है, तो हमें कभी इस क़ानून को नहीं मानना चाहिए !—और जो कुछ दुःख हम पर पड़े, उन्हें सहर्ष सहना चाहिए। इस कानून को स्वीकार करने से पहले अगर हमारा सर्वस्व स्वाहा हो जाय, और हमारे प्राण भी चले जायँ—तो उत्तम है !"

---

१. दक्षिण अफ्रीका से प्रकाशित होने वाला भारतीयों का एक मात्र (साप्ताहिक) पत्र।

और कई आदमियों के समर्थन के बाद सेठ हाजी हबीब भी उठ खड़े हुए। उठते ही गरजकर कहना शुरू किया—"ओफ! मेरे भाइयों, मैंने जब से इस बिल का मस्विदा पढ़ा है, मेरे तन-बदन में आग लग रही है!—हमारे नन्हें दुध-मुँहे बच्चों तक को परवाना लेना होगा! कहाँ से?—उस एशियाई दफ्तर से, जहाँ आज दुनिया के छटे बेईमानों का राज्य है, और जो हम हिन्दुस्तानियों को लूटना अपना धर्म समझते हैं? हमारी औरतों को पर्दा खोलकर उन हरामज़ादों के सामने जाना होगा, और दसों उँगलियों की छाप देकर, अपना सारा बदन दिखाकर खास निशानियों को नोट कराना होगा! दो रुपये का अदना सिपाही चाहे जहाँ हमारी इज़्ज़त उतारने का हकदार होगा! हमारा परवाना देखने के लिए गुण्डे पुलिस अफसरों को बे रोक-टोक हमारे घरों में घुसने की आज़ादी होगी!—ओफ़! यह अपमान सहन करने के पहले, अगर हम फाँसी लगाकर या कुएँ में डूबकर मर जायँ तो बेहतर है! क्या कोई ग़ैरतदार हिन्दुस्तानी इन बेईमान गोरों के हाथ से अपनी औरतों को बेइज़्ज़त कराना पसन्द करेगा? क्या कोई हयादार हिन्दू या मुसलमान अपनी औरत को बेपर्द करके उन नीच एशियाई दफ्तर वालों के पास भेजेगा?—"

श्रोताओं में से आवाजें आईं—"कभी नहीं! कभी नहीं!!"

सेठ हाजी हबीब ने कहा—"अगर कोई बदमाश मेरी औरत से परवाना माँगने आवेगा, तो मैं उसे वहीं मार डालूँगा—पीछे चाहे मेरा कुछ भी होता रहे। आप सब को समझ रखना चाहिए कि हम पर चाहे जैसी मुसीबतें आयें, हमें सब सहनी होंगी, पर इस कानून को हर्गिज़-हर्गिज़ न मानना होगा। हम मर्द हैं, नामर्दों की तरह चुपचाप इस अत्याचार को सहन नहीं कर सकते। बस, मैं अल्लाह पाक़ की कसम खाकर कहता हूँ कि मैं शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी इस कानून को नहीं मानूँगा, और आप लोगों से भी मेरी इल्तिजा है कि आप अल्लाह-पाक़ की कसम खावें!"

तब उस सभा में उपस्थित सब भारतीयों ने खड़े होकर एक स्वर से कसम खाई कि, हम कभी इस कानून के आगे सिर न झुकावेंगे, चाहे हमें जेल जाना पड़े, देश छोड़ना पड़े, फाँसी पर लटकना पड़े, और सब तरह के कष्ट भोगने पड़ें।

उस थियेटर हॉल से निकलने वाला प्रत्येक भारतीय उस दिन अपने व्यक्तित्व में एक अभूतपूर्व और अनिर्वचनीय भारीपन, एक शुभ संकल्प-पूर्ति का उत्तरदायित्व, और एक गम्भीर गौरव का अनुभव कर रहा था। वर्षों पुरानी गोरों की दासता की जंजीर जैसे उन्होंने तोड़ डाली थी, और सारी भीरुता, कायरता और दुर्बलता उस दिन मानों नष्ट हो गई थी, और हरेक के मन में यह उमंग-भरी धारणा जम गई थी कि हम गोरों से किसी प्रकार न दबेंगे! हम गोरों से किसी प्रकार न दबेंगे!!

आखिर दृढ़ निश्चय में कुछ शक्ति तो होती ही है। कुछ समय के लिए कानून का प्रचलन रुक गया। परन्तु कुछ दिन बाद ही जब ट्रान्सवाल को उत्तरदायी शासन मिल गया, तो सबसे पहले भारतीयों पर वह 'खूनी कानून' लगाने की घोषणा की गई।

इधर भारतीयों ने भी जगत्-प्रसिद्ध, अभूतपूर्व 'सत्याग्रह संग्राम' की घोषणा कर दी, और किसी प्रकार भी इस पशुत्वपूर्ण कानून को न मानने की प्रतिज्ञा को दोहराया।

तीन

(१)

सन् १९०७ की पहली अगस्त का निर्मल प्रभात था। ट्रान्सवाल-भर में आकाश उस दिन साफ़ था, वातावरण स्तब्ध था, और हवा बिल्कुल बन्द। भारतीयों को खदेड़ने, या उन्हें क्रीत-दास बनाने वाले परवाने आज ही देने शुरू किये जाने वाले थे।—और आज ही संसार के इतिहास में अश्रुतपूर्व, अभूतपूर्व, मौलिक—सत्याग्रह का आत्म-युद्ध शुरू होने वाला था।

सूरज निकलने से पहले—सुबह गजरदम—एक छोटे-से अहाते में बहुत से भारतीय स्वयंसेवकों से घिरे हुए गांधीजी खड़े थे।

उन्होंने कहना शुरू किया—"भाइयो, हमारे सिर पर वज्र-प्रहार की तरह परवाने का खूनी कानून घहरा पड़ा है, हम आज अपने पूर्ण आत्मबल से उसका प्रतिकार करने को उद्यत हुए हैं। यह युद्ध शुद्ध आत्म-युद्ध है, और इसका नाम 'सत्याग्रह' है। हमें जो कुछ करना होगा, प्रार्थना, आग्रह, विनय और धैर्य से करना होगा। इस धैर्य के बदले हम पर मार पड़ सकती है, हमें जेल में भेजा जा सकता है, हमारा अपमान किया जा सकता है, हमें कठोर-से-कठोर दुख दिया जा सकता है। परन्तु हमें अपना धीरज नहीं छोड़ना होगा, हमें अपने ऊपर जुल्म करने वालों पर क्रोध नहीं करना होगा।—कहिए, आप

लोग समझ गए ?"

समस्त स्वयंसेवक-सत्याग्रहियों ने कहा—"जी हाँ, समझ गए।"

"देखो," गांधीजी ने कहा—"संसार के सभी युद्धों से यह सत्याग्रह युद्ध कठिन है। तलवार का बदला तलवार से देकर दुश्मन को मार डालना, या बन्दूक हाथ में होते हुए युद्ध-क्षेत्र में बन्दूक की गोली से मर जाना, बहुत आसान है, पर शारीरिक प्रतिकार करने में कुछ भी समर्थ होते हुए जड़-पदार्थ की तरह मान, अपमान, मार-गाली सहना बड़ा कठिन है। पर याद रखिए सहनशीलता में ही हमारी जीत है, धैर्य, क्षमा और त्याग में ही हमारी सुर्ख़-रुई है,—और इसके विपरीत क्रोध, आवेश या प्रतिहिंसा ही हमारी सबसे बड़ी हार है। मैं इस बात को दोहराये देता हूँ कि यह युद्ध अत्यन्त कठिन है, इसे लड़ने वाला संसार का सबसे बड़ा योद्धा है। अगर कोई स्वयंसेवक अपनी आत्मा को इतना बलवान नहीं समझता है कि वह इस युद्ध को लड़ सके तो वह अब भी छुट्टी ले सकता है, परन्तु एक बार युद्ध-क्षेत्र में जाकर पीठ दिखाने वाला—अर्थात् अपनी आत्मा को दुर्बल बनाने वाला—याद रखिए जाति का सबसे बड़ा दुश्मन होगा, और परमात्मा उसको कभी क्षमा न करेगा।.........क्या कोई व्यक्ति छुट्टी लेना चाहता है ?"

गांधीजी ने दो मिनट तक उत्तर की बाट देखी, परन्तु कोई कुछ न बोला। तब उन्होंने आत्मिक-सन्तोष और आनन्द का अनुभव करते हुए कहा—"ठीक है !"

फिर क्षण-भर ठहरकर बोले—"अब आपकी एक-एक टुकड़ी जोहान्सबर्ग के परवाना देने वाले प्रत्येक दफ्तर के बाहर रास्ते पर जावे। आपका कर्तव्य क्या है ?—इस सम्बन्ध में मोटी-मोटी बातें मैं आपको, आख़िरी बार बता दूँ—जो भारतीय परवाना लेने आवें, उसके साथ ज़रा भी असभ्यता, या छिछोरापन, या उपहास न करें, और विनयपूर्वक उसका नाम पूछें। अगर वह नाम न बताए, तो जबरदस्ती न करें।—फिर वह काग़ज़, जिस पर इस क़ानून की हानियाँ

छपी हुई हैं, उसे देकर उसको समझावें। अगर वह आदमी, फिर भी न माने, और अपनी सम्पत्ति या अपने व्यापार की हानि के डर से परवाना लेना चाहे, तो सत्याग्रही उसके साथ जाकर उसे दफ्तर पहुँचा दे। पुलिस के साथ भी उद्दण्डता न करे, अगर पुलिस पकड़े, तो खुशी से अपने को पकड़ा दे। अगर पुलिस मारे तो चुपचाप मार सहले। अगर मार न सह सके, तो धीरे-धीरे वहाँ से चला जाय, मार का जवाब देने की कल्पना या चेष्टा कदापि न करे।—बस, ये ख़ास-ख़ास बातें हैं, जिन पर आपको अमल करना होगा।......सात बजते हैं आप लोग अब अपनी ड्यूटी पर जाइये !!"

(२.)

स्वयंसेवक चले गये तो गांधीजी गीता का प्रसिद्ध श्लोक—'कार्यं वा साधयेयं, शरीरं वा पातयेयम्' गुनगुनाते हुए,—गुनगुनाते हुए क्यों, बल्कि अत्यन्त कोमल और मीठे स्वर में गाते हुए— उस छोटे-अहाते में इधर-से-उधर टहलने लगे।

शरीर पर एक कमीज़ है, टांगों में एक धोती है, हाथ दोनों पीछे हैं, और यह महा-पुरुष, परमात्मा का पवित्र और उच्च-तम अंश, कार्यं वा साधयेयं, शरीरं वा पातयेयम्' गाता हुआ घूम रहा है।

तीन दिन, और तीन रातें बिना सोये बिताई हैं, खाने-पीने का होश नहीं, स्त्री-बच्चों की चिन्ता नहीं है, चमकती हुई प्रैक्टिस को लात मार दी है, स्वास्थ्य किसे कहते हैं—यह भुला दिया है, और यह अद्भुत आत्म-बली, दोनों हाथ कमर के पीछे बांधे, 'कार्यं वा साधयेयं, शरीरं वा पातयेयम्' गाता घूम रहा है!

चेहरे पर आत्म-बल का अपूर्व तेज है, आँखों में सब कुछ सहने की अद्भुत दृढ़ता है, निर्बल शरीर में मानो एक अनिर्वचनीय ईश्वरीय शक्ति भर गई है, मानों हृदय में जैसे विजय का अलौकिक विश्वास है और मुख से 'कार्यं वा साधयेयं, शरीरं वा पातयेयम्!' निकल रहा है।

मुक़ाबिले में जनरल बोथा, और जनरल स्मट्स जैसे धूर्त्त राज-नीतिज्ञ हैं, महान् ब्रिटिश-राज्य है, अनगिनित तोपें, बन्दूकें और अत्यन्त धन शक्ति और प्रभुता है, परन्तु यह धन-हीन, शक्ति-हीन निर्बल-शरीर गांधी मुट्ठी-भर निरस्त्र, शान्त भारतीयों को लेकर लड़ने चला है, और उस छोटे-से अहाते में इधर-से-उधर घूमता हुआ, मधुर कण्ठ से यह कठोर सङ्कल्प कर रहा है—'कार्यं वा साधयेयं, शरीरं वा पातयेयम् ।'

कैसा अद्भुत युद्ध है ! कैसा अनोखा निश्चय है ! कैसा अलौकिक विश्वास है !

कोई सोचे, क्या ऐसी कल्पना-तक करना किसी मनुष्य का काम है ?

(३)

सात से आठ बज गये और आठ से नौ, परन्तु गांधी जी—पता नहीं किस चिन्ता में निमग्न, भविष्य की किस कल्पना में तल्लीन, अतीत की किस पवित्र-स्मृति का सुख अनुभव करते हुए—'कार्यं वा साधयेयं, शरीरं वा पातयेयम्' गाते फिर रहे थे !

सहसा एक स्वयंसेवक बद-हवास दौड़ता हुआ वहां आ पहुँचा, और बोला—"ग़ज़ब हो गया !"

गांधीजी ने चौंक कर पूछा—"क्या ?"

"कुछ व्यापारी परवाना लेने आरहे थे, रास्ते में कुछ लठ-बन्द आदमी उन्हें मिले—"

"हिन्दुस्तानी—?"

"हाँ, हिन्दुस्तानी,—उन्होंने उन व्यापारियों को पकड़ लिया, और बोले—"अगर परवाना लेने जाओगे, तो तुम्हारा सिर फोड़ दिया जायेगा !'—वे व्यापारी वापस लौट गये और स्थानीय सरकारी अधि-कारी ने सब वृत्तान्त सुनकर सशस्त्र पुलिस के दस्ते के साथ एक तोप भी भेजी है, कि वह उन सब आदमियों को गिरफ्तार कर लायें, अगर

वे आने में आना-कानी करें, और लड़ने पर उतारू हों, तो तोप पर बत्ती रखकर या बन्दूकों के घोड़े दबाकर सब को समाप्त कर दिया जाय !"

गांधीजी के मुंह से एक बार "हा हन्त !" निकला और एकाध अनिवार्य बात पूछ करके वे दो मिनट में तैयार होकर उस स्वयंसेवक के साथ घटना-स्थल की तरफ दौड़ पड़े !

तीन रातों का जागरण, खाने-पीने की अव्यवस्था, अङ्ग-अङ्ग थकान से शिथिल— और इस दशा में वह ईश्वर का अंश, एक महान् अनर्थ को रोकने के लिये बिजली की तरह दौड़ पड़ा !!

गज की विपत्ति सुनकर भगवान, के दौड़ पड़ने की कथा कुछ तथ्य-हीन तो नहीं जान पड़ती !

(४)

एक बहुत बड़े मकान के सामने कई दर्जन स-शस्त्र गोरे दो क़तारों में खड़े थे। सब के कन्धों पर भरी हुई बन्दूकें थीं, और सामने गाड़ी पर लदी हुई एक छोटी सी तोप रक्खी थी। उस तोप के पीछे खड़े दो आदमी उसमें गोला-बारूद भर रहे थे, पास ही इस दल का अंग्रेज नायक खड़ा था।

गांधी जी सीधे नायक के पास पहुंचे, और बोले—"सर, यह मोर्चा-बन्दी क्यों हो रही है ?"

नायक ने घूरकर गांधी जी को पहचाना, और दांत पीसकर कहा—"ओ, तुम ही शैतान गांधी है !— यह सब तुम्हारी शरारत का फल है !!"

गांधीजी ने निर्विकार भाव से कहा—"सर, आप भूलते हैं।—मैं अपना प्रश्न पुनः दोहराता हूं।"

"हम इस सामने वाले मकान को उड़ा देंगे।"

"क्यों ?"

"इस में बाग़ी छिपे हुए हैं।"

"उन्होंने क्या किया है?"

"उन्होंने राज-भक्त प्रजा को विद्रोह के लिये उकसाया है और वैसा न करने पर जान से मार डालने का भय दिखलाया है।"

"तो आप उन्हें गिरफ्तार कर उन पर मुक़द्दमा चलाइये।"

"अगर वे आत्म-समर्पण कर दिये होते तो ऐसा ही होता। अब वे भीतर जाकर छुप गये हैं, तो इस मकान को ही हम उड़ा दें—ऐसी ही पुलिस-कमिश्नर की आज्ञा है।"

"अगर वे अब आत्म-समर्पण कर दें—तो?"

"तो—?"

"तो आप व्यर्थ का रक्त बहाने से बाज़ आयेंगे?"

"हां···आं···?"

गांधीजी आगे बढ़े और उस दो-मंजिले मकान के नीचे जाकर ज़ोर से बोले—"मैं गांधी हूँ; मुझ पर विश्वास करके इस मकान में छिपे हुए व्यक्तियों का मुखिया मेरे पास आवे।"

दो मिनट बाद एक आदमी बाहर आया।

गांधीजी ने पूछा—"कितने आदमी मकान में हैं?"

"ग्यारह।"

"क्यों छिपे हो?"

"यों ही!"

"देखो—तुमने आरम्भ में ही भारतीयों के आत्म-युद्ध को कलङ्क लगाया है, और तुम सारे देश-भाइयों के निकट अपराधी हो! समझे?"

"उस व्यक्ति ने सिर झुका लिया।"

"बोलो—मानते हो!"

उसने जैसे किसी दैवी शक्ति के वशीभूत होकर कहा—"जी हां, मानता हूँ।"

"पश्चात्ताप है?"

"जी हाँ, है?"

"अच्छा क़ौम की तरफ़ से मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ और अनुरोध करता हूँ, कि तोप के गोले से बे-मौत मरने की अपेक्षा जाकर आत्म-समर्पण कर दो।"

"वे हमें मार डालेंगे।"

"बला से—"

"लेकिन—"

"बस, उनके रहम पर अपने-आपको छोड़ दो। तुम लोगों ने अपराध बड़ा भारी किया है, मगर गवर्नमेंट की इतनी हानि नहीं हुई है, जितनी क़ौम की। कौम की तरफ़ से तुम लोगों को क्षमा मिल चुकी है, गवर्नमेंट की तरफ से इतनी सज़ा न मिलेगी, जितनी तुम सोचते हो। जाओ देर हो रही है।"

मुखिया भीतर चला गया, और दस मिनट में ही अपने साथियों सहित बाहर आ गया।

"गांधीजी उनके साथ गोरों के नायक के पास आये और हँसकर बोले—"अब ये तुम्हारे रहम पर हैं; गिरफ्तार कर लो।"

नायक ने क्षण-भर बाहर अभियुक्तों की तरफ़ देखा, और फिर गांधीजी की तरफ़ और तब उसके मुँह से अनायास निकल पड़ा, "माँ मरियम! यह कौन है!!" तब उसने आगे बढ़कर गांधीजी की तरफ़ अपना दाहिना हाथ बढ़ा दिया, और हँसते हुए बोला—"गांधी, मुझे दोस्त बनाओगे?"

(५)

अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर—चार महीने बीत गये, चोरी- से छुपकर, डरकर, दबकर—१३,००० भारतीयों में से कुल २०० आदमियों ने परवाने लिये। खूब कोशिश की गई, खूब डराया-धमकाया गया, खूब लालच दिया गया, मगर न किसी को डिगना था, न डिगा।

आखिर दिसम्बर में गवर्नमेण्ट ने भयानक दमनास्त्र संभाला और ख़ास-ख़ास नेताओं को दो-दो महीने की सादी क़ैद दे दी !

मगर क़ौम जाग चुकी थी।—इन गिरफ्तारियों ने आग पर घी का काम किया।—देखते-देखते चौगुनी तेज़ी से काम होने लगा, धड़ाधड़ गिरफ्तारियां होने लगीं और धड़ाधड़ जेलें भरने लगीं।

यह महान् व्यक्ति गांधी, वह पुरुषसिंह गांधी, वह परमात्मा का अत्यन्त श्रेष्ठ अंश गांधी जिस दिन जेल में गया, सारी क़ौम मानो हड़बड़ाकर उठ बैठी। सरकार ने सोचा था—सिर कट जाने पर देह निर्जीव हो जायगी,—नेता के जेल जाने पर आन्दोलन शान्त हो जायगा पर नहीं, गांधीजी का व्यक्तित्व, गांधीजी की आत्मिक शक्ति अदृश्य रूप से सत्याग्रहियों के बीच घूम रही थी और जेल की सड़ी, अंधेरी और दुर्गन्धित कोठरी में घूम घूमकर गाया हुआ उनका—'कार्यं वा साधयेयं, शरीरं वा पातयेयम्'—मानों किसी अदृश्य शक्ति द्वारा जनता के कानों में एक मधुर गुंजार उत्पन्न कर रहा था, और न जाने किस उज्ज्वल भविष्य का संदेश सुना रहा था !!

कैदियों की संख्या बढ़ती चली जारही थी।— आखिर जेल की वर्दियां ख़त्म हो गईं, इतने कैदियों को बैठे-बैठे खिलाना मुश्किल होगया, जेल-अधिकारियों के लिये प्रबन्ध करना मुश्किल होगया।

अब कड़ी क़ैद शुरू हुई। मगर आग पूर्ण वेग से धधक उठी थी सत्याग्रही क़ैदियों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ने लगी। संसार के कान खड़े हुए। महा-धूर्त्त राजनीतिज्ञ जनरल स्मट्स की आंखें खुलीं।

(६)

जनरल स्मट्स और गांधीजी मिले। इस समय जनरल साहब के सौजन्य का नाटक कोई देखता—तो उन्हें बिना धिक्कारे न रहता। वह तमतमाता चेहरा, क्रुद्ध चेष्टा, वह गरजता हुआ स्वर सब न जाने कहां चला गया था ! खड़े होकर गांधीजी से हाथ मिलाया, और

हँसते हुए बोले—"मि० गांधी, मैं सबसे पहले आपको इस बात पर मुबारकबादी देता हूँ कि नेताओं के क़ैद होने पर भी आपके अनुयायी शान्त और दृढ़ रहे!"

भोले-भाले गांधीजी ने बालकों के से कोमल स्वर में कहा—"श्रीमान्, इसका कारण यह है कि हमारा युद्ध 'सत्य' पर निर्भर है। और जो युद्ध सत्य और सरलता पर अवलम्बित है उसका हरेक सिपाही नेता है, और एक नेता या एक सिपाही भी जब तक बाक़ी बचता है, तब तक विजय निश्चित् है— ऐसा मेरा विश्वास है।"

गांधीजी की आंखें बचाकर जनरल स्मट्स ने निचला ओंठ दांत से काटा और मुस्कराहट का प्रदर्शन करते हुए बोले—"ख़ैर मुबारकबादी खत्म हुई, अब मैं थोड़े में यही कहना चाहता हूं कि आप अपना आन्दोलन ख़त्म कीजिए।

गांधीजी ने कहा—"ख़ूनी क़ानून के रद्द होते ही हमारा आन्दोलन खत्म हो जायगा यह मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ।"

जनरल स्मट्स बोले "क़ानून को एकदम रद्द कर देने से सरकार की प्रतिष्ठा पर भारी धक्का लगेगा—यह आप समझते ही हैं। और अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, गवर्नमेंएट ख़ून की नदी बहाने में भी नहीं हिचकती है, पर मैं वैसा करना नहीं चाहता मैं आपको व्यक्तिगत रूप से विश्वास दिलाता हूँ कि यदि भारतीय स्वेच्छा-पूर्वक परवाने ले लें तो यह कानून फ़ौरन रद्द हो जायगा।"

गांधीजी ने धीरता-पूर्वक कहा—"मुझे अपने काम से ग़रज़ है अगर हमारी ज़रा सी अड़चन से सरकार की प्रतिष्ठा की रक्षा होती है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, हमें न आपसे दुश्मनी है, न आपकी प्रतिष्ठा घटानी अभीष्ट।……और अगर आप एक हाथ में पिस्तौल लेकर दूसरे हाथ मे लिए हुये, मस्विदे पर दस्तख़त करना चाहें तो यह असम्भव है। जब 'ख़ूनी क़ानून' की पहली पिस्तौल से ही क़ौम न डरी, तो इस धमकी की नई पिस्तौल से कैसे डरेगी? अतएव यदि

आप हमारे परवाने लेने पर खूनी कानून रद्द कर देने का वचन देते हैं, तो हम उसके लिए तैयार हैं।''''''''परन्तु एक प्रार्थना आप से है।"

जनरल स्मट्स ने इस पतले-दुबले हिन्दुस्तानी की निर्भीक बातों पर पुनः होंट काटते हुए धीरे से पूछा—"वह क्या ?"

"जब परवाना लेना हमारी अपनी इच्छा पर छोड़ दिया गया है, तो दसों उंगलियों की छाप देना न देना भी इच्छा पर छोड़ दिया जाय। क्योंकि मुसलमान भाइयों को ऐसा करने में धार्मिक कठिनाई है, और बहुत से हिन्दू भाई भी इसे दासता का अत्यन्त अपमानजनक चिह्न समझते हैं !"

धूर्त्त-शिरोमणि जनरल स्मट्स ने क्षण-भर सोचा और फिर सहसा कहा— "मन्जूर है, कल मैं संशोधित मसविदा आपके पत्र में भेज दूंगा।"

खड़े होकर गांधी जी ने पूछा—"और सत्याग्राही क़ैदी कब छूटेंगे ?"

"ओह !" जनरल स्मट्स ने हंसकर या हास्य का प्रदर्शन करते हुए कहा "उन्हें रात-भर आराम करने दीजिये। सुबह वे छोड़ दिये जायेंगे।"

"धन्यवाद !"—कह कर गांधी जी चले गये।

दुरात्मा जनरल स्मट्स ने कमरे में इधर-उधर घूमते हुए मूँछों पर ताव देकर कहा—"शैतान !— मसीह का अवतार बना फिरता है ! हम से युद्ध करेगा !—भिखमङ्गा ! कुत्ता !"—फिर जोर से दांत पीसकर और मुट्ठी बांध कर कहा—"याद रख बेवकूफ़, तेरा ख़ातमा तेरे बेईमान भाई-बहन ही करेंगे !!"

संसार में परमात्मा को सभी थोड़े पहचान लेते हैं !

(७)

"तुम झूठे हो !' तुम पापी हो भरी सभा में एक पठान ने खड़े

होकर सक्रोध कहा।

गाँधीजी ने शान्त स्वर में पूछा, "कैसे भाई ?"

"तुमने पन्द्रह हज़ार पाउन्ड जनरल स्मटस से लिये हैं, और उनके बदले में यह अपमानपूर्ण समझौता किया है, तुमने अपने पद का दुरुपयोग किया है !" पठान ने गरजकर कहा।

गाँधीजी हंसे और बोले "तुम बड़े सच्चे हो भाई, कहो पंद्रह हज़ार पाउन्ड मुझे नकद मिले हैं, या चेक ?"

पठान ने खिसिया कर कहा "हम नहीं जानते, हम तुम्हें नेता नहीं मानते, भाई हम इस समझौते को स्वीकार न करेंगे।"

"क्यों ?"

"हमारा इतने दिन का परिश्रम बेकार हो जायगा। इतना कष्ट उठाया, व्यापार पर लात मारा, जेल गए, फिर वही परवाना, इससे लाभ क्या ?"

"देखो, जनरल स्मट्स ने खूनी कानून रद्द कर देने का वचन दिया है।"

"भाड़ में जाय जनरल स्मट्स और साथ में तुम भी। हम उस बेईमान की बात पर कैसे विश्वास करें ?"

"देखो भाई, सत्याग्रह का युद्ध सदा विश्वास पर ही चलता है। अगर पचास बार विश्वासघात करे, तो इक्यानवीं बार पुनः विश्वास करना सत्याग्रही का धर्म है।"

"आप अपने ऐसे विश्वास को लेकर चाटिये, कोई सुबूत तो होना चाहिए, जिससे विश्वास करने को जी चाहे।"

"बिना किसी सुबूत के ही हमें फिर विश्वास करना होगा।"

पठान ने चिढ़ कर कहा "तो आप परवाना लेंगे ?"

गाँधीजी दृढ़तापूर्वक बोले, "हां !"

"मगर आप की वे लम्बी-चौड़ी तकरीरें कहाँ गईं", पठान ने मलामत भरे स्वर में कहा, "जिनमें आप परवाना लेने और दसों

उंगलियों की छाप देने को गुलामी का भद्दे से भद्दा निशान बताया करते थे। अब आप हमें उँगलियों की छाप देने की सलाह देते हैं! शर्म……"

"देखो", गाँधीजी ने कहा, "जिन्हें उंगलियों की छाप देने में आपत्ति हो वे भले ही न दें, ऐसा जनरल स्मट्स से तय हुआ है। तुम इस विषय में स्वतन्त्र हो!"

पठान ने दाँत पीस कर कहा, "मगर तुम ज़रूर दोगे?"

"ज़रूर!"

"अच्छा तो याद रखना, मेरा नाम मीर आलम है, तो मैं भी तुम्हें जिन्दा परवाना लेने न जाने दूँगा!"

गाँधीजी ने उठ कर कहा, "मेरा सौभाग्य होगा।"

परवाना लेना निश्चित् हुआ, और गाँधीजी ही सबसे पहले जाकर परवाना लेंगे।

(८)

दस फ़रवरी सन् १९०८ का प्रभात था। गाँधी जी दो अन्य भारतीय नेताओं के साथ सत्याग्रह आश्रम से निकले और एशियाटिक आफ़िस की तरफ़ चले।

सूरज अभी नहीं निकला था, सड़क पर आवाजाही बहुत कम थी। गाँधीजी धीरे-धीरे बढ़ रहे थे।

सहसा किसी ने पुकारा, "ठहरो!"

पास के पेड़ की आड़ से पाँच-छः पठान हाथों में लाठियाँ लिए निकल आये।

आगे-आगे मीर आलम था।

साथी भय के मारे पीले पड़ गए, पर गाँधीजी एक बार आकाश की ओर देख मरने को तैयार हो गए।

मीर आलम ने आगे बढ़कर धीरे से पूछा "कहाँ जाते हो?"

गाँधीजी ने तेज स्वर में कहा, "परवाना लेने।"

"और उँगलियों की छाप देने।"

"हाँ उँगलियों की छाप देने। अगर तुम चलो तो तुम्हें उँगलियों की छाप न देनी पड़ेगी।"

मीर आलम का सिर झुक गया, लाठी वाला हाथ शिथिल पड़ गया। कैसे इस तेज पुञ्ज पर लात रक्खे? कैसे इस निर्दोष आत्मबली पर हाथ उठाये? हठात् उसका कठोर हृदय विद्रोह करने लगा।

गाँधीजी ने कहा "बोलो चलते हो।"

मीर आलम ने बड़ा भारी ज़ोर लगाकर सिर उठाया और उससे भी ज्यादा ज़ोर लगाकर कहा "उन पन्द्रह हज़ार पाउण्ड......"

गाँधीजी बोलने को हुए, कि सहसा पीछे से कड़कती हुई आवाज़ आई "ले रिश्वत का इनाम।"

और उसी क्षण ऐसा भान हुआ, मानों किसी ने हिमालय पर्वत लाकर सिर पर पटक दिया, गाँधीजी 'हाय!' कहकर ज़मीन पर गिर पड़े।

(६)

दे लाठी-दे लाठी अपने जाने गाँधीजी को मुर्दा बनाकर मीर आलम और उसके साथी चले गये।

गाँधीजी का ओठ फट गया है, दो दाँत टूट गये हैं, पसली की हड्डी उखड़ गई है, बदन जख्मी हो गया है, जोड़ दुख रहे हैं।

डाक्टरों के उपचार से वे होश में आते हैं।

होश में आते ही क्षीण स्वर में उन्होंने प्रश्न किया "मीर आलम कहाँ है?"

किसी ने कहा "वे पकड़े गये।"

गाँधीजी ने चौंक कर कहा "अरे! पकड़े गए?"

"हाँ, उन पर मुक़दमा चलेगा।"

"ना! ना! कभी नहीं" गाँधीजी ने व्यग्रतापूर्वक कहा "वे

छूटने चाहिए।"

"देखिये, यह सब पीछे भी हो सकता है, आपके शरीर से खून बहुत गया है, आप आराम कीजिए।"

"ना! ना!" गाँधीजी बोले, "सबसे पहले मेरी तरफ़ से सरकारी वकील को तार दे दीजिए, कि वो छोड़ दिए जायँ।"

"क्यों छोड़ दिये जायँ?" एक और अंग्रेज़ सज्जन ने तर्क किया। "उसने अपराध किया है, उसका दण्ड उसे अवश्य मिलना चाहिए।"

"ना! अपने काम पर उसे खुद पश्चात्ताप होगा, यही उसके अपराध का समुचित दण्ड होगा।"

"और अगर वह पश्चात्ताप न करे, देखिये वह बड़ा दुष्ट है।"

"न करे?" गांधीजी ने कहा, "तो यह उसकी दुष्टता का कारण नहीं, मेरे हृदय की सत्यता, पवित्रता और सरलता की कमी का कारण होगा।"

तर्क करने वाले सज्जन चीख मारकर पीछे हट गए, और बोले, "ओफ! मेरे खुदा, आज इसके दर्शन करके सफल हुआ।"

तार लिखा गया, और उसी वक्त रवाना कर दिया गया।

एशियाटिक विभाग का अंग्रेज़ अधिकारी भी वहीं मौजूद था, उसकी तरफ़ देखकर गांधीजी ने कहा, "आप रजिस्टर ले आइये।"

"कैसा रजिस्टर?"

"मैं अपनी दसों उँगलियों की छाप देकर सबसे पहले परवाना लेने की शपथ उठा चुका हूँ, मेरी शपथ पूरी होनी चाहिये।"

"मगर देखिये, आप कमज़ोर हैं।"

"कोई परवाह नहीं, धन्यवाद, मैं कर सकूँगा।"

"मगर ऐसी जल्दी क्या है?"

"देखिये" गाँधीजी ने कातर स्वर में कहा, "मेरी शपथ न तोड़िये"

रजिस्टर आया, और बड़ी मुश्किल से बिछौने पर बैठ कर, क्षत-विक्षत, दुर्बल-शरीर, गाँधीजी ने काँपते हाथों से दसों उँगलियों की

छाप दी, और दस्तख़त किए।

तब लम्बी-लम्बी साँस लेते, बिछौने पर लेट गए।

जितने वहाँ उपस्थित थे, सब की आँखें भर आईं और एशियाटिक विभाग का वह अफ़सर तो सचमुच रो पड़ा और रूमाल से आँखें पोंछता हुआ बोला, "ओफ ! मेरे ख़ुदा, जनरल स्मट्स किस स्वर्गीय आत्मा से कपट करने जा रहे हैं और किस पूजनीय शक्ति से लड़ाई कर रहे हैं।"

गाँधीजी कई दिन बिछौने पर पड़े रहे, एक दिन रात को नींद में चौंककर पूछने लगे, "मीर आलम छूट गया ?"

शाम को ही मीर आलम और उसके साथियों के छूटने की खबर आ चुकी थी। जवाब मिला, "छूट गया।"

"और उसके साथी भी।"

"हाँ, साथी भी !"

तब रात-भर गाँधीजी गहरी और आरामदेह नींद में सोये।

चार

(१)

दोपहर की कड़कड़ाती धूप पड़ रही थी। बॉक्सरेट की जेल में एक-एक लँगोटा बाँधे, कुछ भारतीय बैठे, पत्थर की गिट्टियाँ फोड़ रहे थे। ऊपर से सूर्य जलाता था, नीचे पत्थर के टुकड़े! पसीने की कुछ न पूछिए! हर-एक कैदी के चारों तरफ़ की गिट्टियाँ नम हो गई थीं। अभ्यास न होने के कारण बेचारों की उँगलियाँ कुचल गई थीं, फिर भी किसी-न-किसी तरह सब लोग काम किये जाते थे—किये जाते थे।

पास ही छाता लगाए एक गोरा घूम रहा था, उसके हाथ में एक मज़बूत चाबुक था। ज़रा किसी को दम लेते देखा—फटाफट चाबुक की मार! उस वक्त की चीख़-चिल्लाहट सुनकर किसका हृदय था, जो न फट जाता!!

इसी समय एक छोटा अँगोछा लपेटे, पतले और मैले कपड़े की बगडी पहने, हाथ में झाड़ू लिये, एक व्यक्ति वहाँ आ खड़ा हुआ और बोला—"शाबाश दोस्तो, लाज न जाने पाये!"

सब ने पहचाना—गांधी जी!

दो-एक गिट्टी फोड़नेवाले उनकी तरफ़ आकृष्ट हुए। भला यह उस गोरे को कैसे सह्य होता। वह झपटकर पास आया, और बोला, "क्यों बे गाँधी! तू क्यों आया है?"

गाँधी जी ने सिर झुकाकर नम्रतापूर्वक कहा—"साहब, मैं अपना काम कर चुका!"

"अपना काम कर चुका!" गोरे ने डण्डा हिलाते हुए कहा—"क्या काम तुझे मिला था?"

गाँधीजी ने उसी स्वर में कहा—"साहब, मैं चार दिन से पाख़ाना साफ़ करने पर नियुक्त हूँ। इस समय निबट चुका हूँ।"

"थू! थू!—हट परे!" गोरे ने घृणा से मुँह बनाकर हाथ का चाबुक गाँधीजी के पेट से छुला दिया।

गिट्टी फोड़नेवालों के हाथ वहीं-के-वहीं रह गये। दो-चार उठ भी खड़े हुए, न मालूम क्या दुर्घटना हो जाती कि गोरा सँभल गया और बोला—"गाँधी, तुम्हें अपनी दुर्दशा पर दुःख नहीं होता?"

"बिल्कुल नहीं!"

"बिल्कुल नहीं! हो हो! बिल्कुल नहीं!" गोरे ने ठठाकर नाँचते हुए कहा—"क्यों झूठ बोलते हो? वह चलती हुई प्रैक्टिस! मज़ेदार खाना! और यह भंगी बनना! भला इसमें कुछ फ़र्क नहीं है? हो हो! कहता है बिल्कुल नहीं!!"

"साहब, यह पाख़ाना साफ़ करते हुए मुझे गौरव होता है।"

"गौरव होता है!" गोरे ने दोनों हाथ कमर पर रखकर नाटक के पात्रों की तरह अभिनय किया—"ओ भाई संन्यासी! यह गौरव मेरी समझ में नहीं आया। ज़रा मुझे समझा तो सही!"

"साहब, तुम्हारी आत्मा इतनी बलवान नहीं है कि तुम उसे समझ सको।"

"हूँ!" गोरे ने गर्दन हिलाकर कहा, "किसकी आत्मा इतनी बलवान् है, ज़रा बता तो सही!"

"इनकी!" कहकर गाँधीजी ने गिट्टी तोड़ते हुए सत्याग्रही क़ैदियों की तरफ़ हाथ फैला दिया।

"हा! हा!"—गोरे ने पत्थर के एक ढोके पर हाथ की चाबुक ज़ोर-

से फटकारते हुए कहा—"इन हिन्दुस्तानी कुलियों की ?···अच्छा तो, हिन्दुस्तानियों की आत्मा बलवान् होती है, अँग्रेज़ों का दिमाग़ !—क्यों ?"

"नहीं साहब, बहुत-से अंगरेज़ों की भी आत्मा बलवान् होती है।"

"शुक्र है !" गोरे ने कहा—"भला जनरल स्मट्स की आत्मा बलवान् है या नहीं ?"

गिट्टी तोड़नेवालों में से एक ने उत्तेजित होकर मराठी में कहा—"जनरल स्मट्स अव्वल दर्जे का पाजी, झूठा, और विश्वासघाती है। उसने वचन तोड़ा है। उसने गाँधीजी के साथ विश्वासघात किया है, उसका कभी भला नहीं हो सकता।"

गोरा मराठी नहीं समझता था। उसने एक बार इस उत्तेजित सत्याग्रही की तरफ़ देखकर गुर्रा दिया, और फिर गांधी जी से कहा—"क्यों जी, जेल में आकर अब मजे से गिट्टियाँ तोड़ते और पाख़ाना साफ़ करते हो इससे भला तुम्हें क्या अधिकार मिल गये ?"

"साहब, आप नहीं समझ सकते !" आख़िर गाँधीजी ने इस व्यर्थ के वार्त्तालाप को समाप्त कर देने के अभिप्राय से मुँह फेरकर कहा।

"अरे बदमाश ! देख, अभी तुझे बतलाता हूँ, कैसे समझते हैं ?" कहकर गोरे ने ज़ोर-से चाबुक गाँधीजी की कमर पर मारा।

एक बड़ी तेज़ 'आह' निकलकर उस चिलचिलाती धूप में न-जाने कहाँ विलीन हो गई !

आप मनुष्य हैं। बस, इससे ज़्यादा देखने की ताब आप में नहीं है। बस, आइए, यहाँ से हट चलें; कहीं ऐसा न हो आपका कलेजा फट जाय, या दौड़कर आप इस गोरे पर झपट पड़ें; क्योंकि आप सत्याग्रही तो नहीं हैं न !

विश्वासघाती जनरल स्मट्स ने जब खूनी क़ानून रद्द न किया तो लिये हुए परवाने जला दिये गए। फल-स्वरूप इन शिक्षित भारतीयों से चोर-डाकुओं की तरह काम लिया जा रहा है और भेड़-बकरियों की तरह बल्कि निर्जीव पत्थरों की तरह, जेल में भरकर इन्हें पीटा जा रहा है।

(२)

अन्त में भारतवर्ष अपने इन भाइयों की कष्ट-कथा सुन-सुनकर बिलबिलाने लगा। भारत के मानवोद्धित नेता गोखले ने सन् १९११ में दक्षिण-अफ्रीका आना निश्चित् किया।

गोखले दक्षिण-अफ्रीका में आये तो बड़ी धूमधाम मची। स्टेशन सजाये गए, जुलूस निकाले गए, सभाएँ हुईं।

धार्मिक हिन्दू-नेता गोखले ने दक्षिण-अफ्रीका के मन्त्रि-मण्डल से भेंट की।

धूर्त जनरल स्मट्स को तो यह मंजूर न था कि गोखले को साफ़ जवाब देकर भारत में अपने लिये विष के बीज बोए। अतएव, उसने खूनी कानून और तीन पौण्ड के कर को रद्द करने का वचन दे दिया।

भारतीय नागरिकों ने मानो गङ्गा नहाई और यह सोचकर परमेश्वर को धन्यवाद दिया कि चलो, झगड़ा ख़त्म हुआ।

परन्तु गोखले चले गये, तो भारतीयों को अँगूठा दिखा दिया गया और संसार में सब से अधिक सभ्यता का ढोंग रचनेवाले अंग्रेज़ों के भाई जनरल स्मट्स ने पूछे जाने पर ऐसा वचन तक देने से साफ़ इन्कार कर दिया।

अब भारतीय प्रजा क्या करे? इस सम्बन्ध में विचार-विनिमय हो ही रहा था कि एक और महा-अमानुषिक, पशुतापूर्ण और अनुचित वज्र उनके सिर पर गिरा। अर्थात् यह क़ानून बना कि दक्षिण-अफ्रीका में भारतीयों के जो विवाह उनकी अपनी पद्धति से हुए हैं, वे सब नाजायज़ हैं और उनकी सन्तान कानूनन् उनकी सम्पत्ति की वारिस नहीं है। मतलब यह कि भारतीय प्रजा की स्त्रियाँ—स्त्रियाँ न रहकर रखेली और ख़ानगी बना दी गईं।

(३)

एक दिन एक मराठी स्त्री सुर्ख़ चेहरा बनाये गांधी जी के पास

आई, और कड़ककर बोली—"आप लोगों पर धिक्कार है!"

गांधी जी ने नम्रतापूर्वक कहा—"यह क्यों, बहन ?"

"सरकार ने हम स्त्रियों का ऐसा अपमान किया है, और आप लोग चुपचाप बैठे उसे सह रहे हो!"

"ओह! आप क़ानून की बात कहती हैं ?"

"हाँ, जिसके अनुसार हम गृहिणी न रहकर रण्डी हो गई हैं, और हमारी सन्तान हराम की पैदाइश समझी जायगी।"

"देखिए, हम उसके प्रतिकार का उपाय सोच रहे हैं।"

"बस, रहने दीजिये, आप लोग कुछ नहीं कर सकते।"

"क्यों ?"

"बरसों बीत गये, मगर आप अपने एक छोटे-से प्रयत्न में सफल नहीं हुए हैं। जनरल स्मट्स एक ही पाजी आदमी है! आप उसकी बातों में आकर हर बार सब-कुछ करा-कराया स्वाहा कर बैठते हैं।"

"पर बहन, सत्याग्रह का युद्ध तो विश्वास पर ही चलता है।"

"विश्वास किया जाता है आदमियों का। महाशय, आप जिनका विश्वास कर रहे हैं वे मनुष्य नहीं, पशु हैं!"

"शान्त हो बहन, हरेक मनुष्य में पशुता होती है और हरेक पशु में मनुष्यता, मगर दोनों ही चीज़ों की हद होती है। हम गोरों की पशुता को हद पर पहुँचा देना चाहते हैं।"

अब वह महिला कुछ नरम पड़ीं और बोलीं—"अच्छा, इस नये क़ानून का क्या प्रतिकार आपने सोचा है ?"

"वही सत्याग्रह!"

"कैसे ?"

"बस, जो सत्याग्रह-युद्ध चल रहा है, उसमें इसे भी शामिल कर लिया जगा।"

"नहीं, आप लोगों से हम स्त्रियों को कुछ आशा नहीं है।"

गांधी जी ने हँसकर कहा—"फिर कैसे विश्वास हो ?"

"बस, आप हमें युद्ध की आज्ञा दीजिये।"

"अरे!" ज़ोर से 'अरे' कहकर गाँधी जी स्तब्ध-से हो गये, फिर बोले—"क्या स्त्रियाँ सत्याग्रह करना चाहती हैं?"

"क्यों? स्त्रियाँ शरीर नहीं रखतीं?"

"क्यों नहीं?" कहकर गाँधी जी फिर विचार में पड़ गये।

ओफ! कैसी भयंकर बात! स्त्रियों का जेल जाना! कष्ट सहना! गाली, लाञ्छन और अपमान बरदाश्त करना। और वे करें तो करें, पुरुष कैसे बरदाश्त करेंगे! और फिर कितनी स्त्रियाँ ऐसी वीर और हिम्मतवर मिलेंगी जो सत्याग्रह कर सकेंगी?

पूछा, "क्या आप अकेली ही सत्याग्रह करेंगी?"

"मैं अकेली भी तैयार हूँ; पर और भी कुछ स्त्रियाँ ऐसी हैं जो मेरा साथ देने को तैयार हैं। और आप शुरुआत तो होने दीजिए, देखिये कितनी तैयार हो जाती हैं!"

"बेशक!" कहकर गाँधी जी क्षण-भर को चुप हुए, फिर बोले—"अच्छा, आप अपनी साथिनों को तैयार कीजिए, मैं परीक्षा लेकर कोई विचार स्थिर करूँगा।"

(४)

गाँधी जी स्त्रियों की दृढ़ता जाँच रहे हैं।

"क्यों कैसे आई?"

"जेल जाना चाहती हूँ।"

"क्यों?"

"हमारा जैसा अपमान हुआ है, उसने हमें जगत् में मुँह दिखाने लायक़ नहीं रखा।"

"जेल जाने से क्या होगा?"

"हमारे कष्ट देखकर या तो भगवान् हमारे दुख दूर करेंगे या हम वहीं ख़त्म हो जायँगी।"

"तुम्हें मालूम है, जेल में कैसे-कैसे भयानक कष्ट मिलते हैं!"

"चाहे जैसे भयानक हों। इस समय हमारी आत्मा को जो भयानक कष्ट हो रहा है, उसके मुकाबिले में सब कष्ट हेच हैं।"

"देखो, जेल में रूखी-सूखी बिना घी की, मिट्टी मिली हुई रोटी मिलती है यह तुम स्मरण रखो।"

"जी हाँ, मैं इसकी परवाह नहीं करती।"

"और देखो, जेल में ऐसे सुन्दर वस्त्र भी पहनने-ओढ़ने को नहीं मिलते।"

"कोई चिन्ता नहीं!"

"सैकड़ों तरह की गालियाँ सुननी पड़ेंगी, अनेक प्रकार के अपमान सहने पड़ेंगे।"

"सब सह लूँगी!"

"देखो, सोच लो, वहाँ सब काम अपने हाथ से करना पड़ेगा; आवश्यकता पड़ने पर पाख़ाना तक साफ़ करना पड़ेगा। पाख़ाना! समझीं?"

अब उस बहन ने तमककर कहा—"गांधी जी! पाख़ाना साफ़ करने को आप मर्द एक बहुत बड़ी बात समझते होंगे, हम स्त्रियाँ तो सदा ही बच्चों का पाख़ाना साफ़ करने की अभ्यस्त हैं। फिर हम क्यों हिचकेंगी।"

गांधी जी ने आत्मिक आनन्द का अनुभव किया और हँसकर कहा—"देखो, तुम्हारी दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए ही मैं ऐसे ठोक-पीटकर तुम से प्रश्न कर रहा हूँ। मैं यह उचित समझता हूँ कि सिर्फ़ एक सत्याग्रही युद्ध करने को तैयार हो और दृढ़ रहे, बनिस्बत इसके कि हज़ारों-लाखों में से एक फ़ेल हो जाय।"

"फ़ेल हो जाना कैसा?"

"मार-पीट सहना, गालियाँ सुनना, जेल जाना, पत्थर की तरह सहनशील बनना—यह पास होना है और आवेश में आ जाना, अदालत में माफ़ी माँग लेना—यह फ़ेल होना है। मैं कदापि यह नहीं

चाहता कि इस समय तुम या कोई जोश में आकर उस संग्राम में कूद पड़े और पीछे फ़ेल होकर जाति की हानि करे।"

"गाँधी जी हमारी बात पत्थर की लकीर समझिए। हम मर जायँगी, पर डिग नहीं सकतीं। हमारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कोई भले ही कर डाले पर हम उफ़ तक न करेंगी। आप देखिये तो सही, हम अपने कर्तव्य और आपकी आज्ञा का पालन किस प्रकार करती हैं।"

तब वे महापुरुष प्रसन्न होकर एक बार धीरे से हँस दिये, और दोनों हाथ उठाकर बोले—"जाओ, देश की लाज रखने वाली देवियों, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे!"

पर विश्वासघाती जनरल स्मट्स की सरकार अभी इतनी बेहया नहीं बनना चाहती थी। ग्यारह स्त्रियों की जो टुकड़ी सत्याग्रह-युद्ध में शामिल हुई, उसे गिरफ़्तार नहीं किया गया। उन्होंने बिना परवाने के सरहद भी लाँघी, फेरी भी लगाई, पर किसी सिपाही ने उन्हें गिरफ़्तार न किया।

तब यह स्त्रियों की टुकड़ी गाँधी जी के आदेशानुसार न्यूकॉसिल की तरफ़ चली।

कोयलों की खानों के पास पहुँचते-पहुँचते सैकड़ों भारतीय-मज़दूर उनके इर्द-गिर्द जमा हो गये।

इस टुकड़ी में से एक स्त्री ने कहना शुरू किया—"भाइयों, हम यहाँ किसलिए आई हैं? यह सुनिये। यूनियन-सरकार ने हम भारतीयों पर जो अन्यायपूर्ण प्रतिबन्ध लगा रखे हैं, उनका विरोध करना प्रत्येक भारतीय का धर्म है। आख़िर हमने क्या पाप किया है कि हमसे तीन पौंड प्रतिवर्ष 'कर' लिया जाता है। तुम लोग गोरों से ज्यादा परि-श्रम करते हो, उनसे बहुत कम उपार्जन कर पाते हो, गहरी खानों में काम करते-करते तुम अकाल-मृत्यु को प्राप्त होते हो। और तिस पर तुम्हारी अपेक्षा पशुओं के प्रति गोरों का व्यवहार सुन्दर होता है। इससे अधिक तुम्हारे ऊपर तीन पौंड सालाना का टैक्स लाद रखा है। इस

टैक्स की अदायगी के लिए तुम्हारी स्त्रियाँ, बच्चे भूखे तक मर जाते हैं, बहुत-सी असहाय बहनें अपना सतीत्व-रत्न बेचकर यह तीन पौंड का कर अदा करती हैं। इस तरह तुम मनुष्य होते हुए पशुओं से भी अधिक निन्द्य जीवन बिता रहे हो!

गाँधी जी का नाम तुमने सुना होगा। उन्होंने इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाई है। हम उन्हीं की भेजी हुई तुम्हारे पास आई हैं। उनकी आज्ञा है कि तुम सब लोग एकदम काम छोड़ दो, इससे मजबूर होकर सरकार को तुम्हारे कष्ट दूर करने होंगे। एकदम काम छोड़ने पर तुम्हें खाने-पीने का कष्ट होगा, शायद जेल भी जाना पड़े, और भी तरह-तरह के दुःख मिल सकते हैं। इन सब बातों पर विचार करके कहो—क्या तुम हड़ताल करोगे ?"

ग़रीब-मज़दूरों ने कोलाहल मचाते हुए कहा—"ज़रूर करेंगे, अभी हड़ताल करेंगे!"

"सब कष्टों को सह लोगे ?"

"हाँ, सह लेंगे। अभी कौन सा सुख हमें मिल रहा है!"

"अच्छा, तो इसी दम गाँधीजी के पास चले चलो!"

इसी समय हाथों में मज़बूत चाबुक लिए, आठ-दस गोरे लाल चेहरा बनाये, वहाँ आ खड़े हुए, और एक ने डपटकर एक स्त्री से पूछा—"तुम यहाँ क्यों आई हो ?"

उसी स्त्री ने नम्रतापूर्वक कहा—"हम इन मज़दूरों से हड़ताल कर देने का अनुरोध करने आई हैं।"

"क्यों ? तुम्हारा क्या मतलब ?"

"हम तीन पौंड के अन्यायपूर्ण टैक्स को रद्द कराना चाहती हैं।"

"अरे जाओ, जाओ यहाँ से! तुम्हारी शामत ने धक्का तो नहीं दिया है! या बुलाऊँ पुलिस को।"

"आपकी जो इच्छा हो, सो करें!"

"बदमाश औरतें! हमारा व्यापार नष्ट कराना चाहती हैं। जाओ,

ये लोग हड़ताल न करेंगे ! जाओ, चली जाओ !"

इसी समय मज़दूर चिल्ला उठे—"हम हड़ताल करेंगे ! हम हड़-ताल करेंगे !!"

गोरों ने गुर्राकर मज़दूरों की तरफ़ देखा और कहा—"क्या ? हड़-ताल करोगे ?"

"हाँ, हड़ताल करेंगे !"

"जानते हो, इन आवारा औरतों के बहकावे में पड़कर तुम्हें क्या-क्या कष्ट भोगने पड़ेंगे ?"

"हम सब जानते हैं; हड़ताल करेंगे ।"

"याद है, गिरमिट में क्या लिखा है ?"

"हम हड़ताल करेंगे ! हमें परवाह नहीं !"

"क्या जेल की हवा खाने का विचार है ?"

"कोई चिन्ता नहीं ! हड़ताल करेंगे ?"

"अरे बदमाशों, तुम हमारा मुकाबला करोगे, (एक अन्य गोरे की तरफ़ देखकर) जाओ एडवर्ड, पुलिस-सुपरिनटेन्डेन्ड को फ़ोन करो, और मदद मँगाओ । अभी इन की अक्ल दुरुस्त हुई जाती है ।"

एडवर्ड तो उधर गया, और इधर बाकी गोरों ने उन गरीब मज़दूरों पर हाथ के चाबुकों का वार करना आरम्भ किया ।

बच्चे रोते थे, स्त्रियाँ चिल्लाती थीं, मर्द 'हाय ! हाय !' करते थे, और सत्याग्रही महिलाएँ बराबर चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थीं—'खबरदार ! सब मार सिर झुका कर सह लो और चुपचाप खड़े रहो ! मुकाबला करने की बात मन में भी न लाओ ।"

मज़दूरों ने मुकाबला तो न किया, मगर खड़े भी न रह सके; गिरते-पड़ते शहर की तरफ भाग निकले ।

जब पुलिस आई, तो केवल वे ग्यारह सत्याग्रही महिलाएँ, अटल वहाँ खड़ी थीं !

ग्यारहों गिरफ्तार कर ली गईं !

(५)

दुःख, अपमान, कष्ट और परतन्त्रता का जो बाँध विवशता ने बाँध रखा था, गाँधी जी के आन्दोलन ने उसे तोड़ दिया, और स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल भारतीयों ने बिजली की तरह हड़ताल करनी शुरू कर दी। देखते-देखते पाँच-छः हज़ार मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। अनेक मिलों के दफ्तरों में ताले लटक गये, अस्पतालों में गोरे रोगी भिनकने लगे, प्रमादी, घमण्डी, साहब-लोगों के मुँह में से मक्खियाँ आने-जाने लगीं, पाखाने सड़ने लगे और इस तरह 'तुच्छ' भारतीयों की संगठित हड़ताल ने एक-बारगी गोरों में त्राहि-त्राहि मचा दी।

खानों के मालिकों ने गाँधी जी को निमन्त्रण दिया। बहुत जलकर बहुत कुढ़कर, और बहुत व्यथित होकर! भला एक काले हिन्दुस्तानी को गौराङ्ग-प्रभु निमन्त्रण दें। इससे अधिक डूब मरने की बात उनके लिए क्या हो सकती है!! अस्तु—

गाँधी जी गये। एक बड़े कमरे में मोटे, लम्बे, नाटे, दुर्बल अनेक अङ्गरेज़ खान-मालिक बैठे हुए थे। किसी के हाथ में सिगरेट था, कोई हाथ की बेंत हिला रहा था, कोई दोनों कोहनियाँ मेज पर टेके दसों उँगलियाँ मिलाये बैठा था, कोई हथेलियाँ मल रहा था, कोई सीटी बजा रहा था।

और सबके चेहरे क्रोध, क्षोभ, अपमान और लज्जा के कारण रक्त-वर्ण हो रहे थे। ओफ्! यह गाँधी कच्चा चबा डालने योग्य है, जिसने हमारे लाखों के व्यवसाय पर एक-बारगी पानी फेर दिया है!!

पर, जब उस छोटी-सी, संक्षिप्त, भव्य-मूर्ति ने उस कमरे में प्रवेश किया, और निश्शंक दृष्टि से इधर-उधर देखते हुए एक हाथ उठाकर सबको सलाम किया, तो एक बार सब लोग आश्चर्य-से भौंचक हो, तन-बदन की सुध भूल गये। यही गाँधी है? यही विशाल अङ्गरेज़-जाति के विरुद्ध खड़ा हुआ है? इसी पर ईमान लाकर हज़ारों आदमी जेल जाने को प्रस्तुत हो गये? इसी दुर्बल-शरीर सीधे-साधे आदमी

की बात मानकर गोखले-जैसा महान् नेता हज़ारों मील से भागा आया ? इत्यादि प्रश्न उन अधिकार-मत्त, घमण्डी गोरों के विकार-ग्रस्त मस्तिष्क में उदय हुए !!

गाँधी जी जाकर कुर्सी पर बैठे, और बात-चीत शुरू हुई।

"आपने यह हड़ताल क्यों कराई ?"

"मैंने हड़ताल नहीं कराई। कहें, गरीब मज़दूरों के प्रति आपके और आपकी सरकार के व्यवहार ने कराई।"

"हमसे तो हमारे मज़दूरों को कोई शिकायत नहीं थी। हाँ, सरकार की बात सरकार जाने, सरकार के अपराध का खमियाज़ा हमें क्यों उठाना पड़े ?"

"बात यह है कि उसमें बहुत अंशों में आपका ही उत्तरदायित्व है। सरकार हरेक कानून में यह बहाना करती है; और वह सच्चा बहाना है कि दक्षिण-अफ्रीका के गोरे यह नहीं चाहते, वह नहीं चाहते।"

"इसका अर्थ ?"

"यानी, अगर आप सब लोग मिलकर सरकार पर ज़ोर डालें तो वह अवश्य भारतीय-मज़दूरों के दुखों को दूर कर दे।"

"मगर यह समझ में नहीं आता—कि मज़दूरों पर ऐसा कौन-सा दुख का पहाड़ आ पड़ा है जिसके नीचे दब कर वे बिलबिला रहे हैं !"

"अब यह तो जिस पर पड़ती है, वही जानता है।"

"आखिर ?"

"जैसे यह तीन पौण्ड-वाला कर ही—"

"ओह ! यह तो व्यर्थ का हठ है, और आपकी शैतानी है। ये लोग यहाँ इतना अधिक कमाते हैं कि साल में तीन पौंड कर उन्हें कतई नहीं अखरता। अगर अखरता तो क्या इतने दिनों से ये लोग कोई आन्दोलन न करते !"

"अब आपकी ज़बान ! आप कुछ भी कहें। मगर भारतीयों की स्थिति से जितना मैं परिचित हूँ उतने आप नहीं। उस तीन

पौंड के कर की अदायगी के लिए कितनी स्त्रियों को व्यभिचार करना पड़ता है, कितने बच्चे होते-ही मार दिये जाते हैं, और किस प्रकार पेट काटकर तीन पौंड जमा करना पड़ता है, यह आप कैसे समझ सकते हैं ?"

"अच्छा बस, बहुत हुआ, अब मतलब की बात पर आइये !"

"कहिये।"

"देखिये इस ढोंग को तो हम भी खूब समझते हैं। अब यह बताइये कि आपका मतलब क्या है ?"

"मतलब ? कुछ नहीं, सिर्फ यही कि भारतीयों पर होने वाला अमानुषिक अत्याचार······"

"अजी वह तो हो चुका ! उस ढोंग को हम समझते हैं।"

"ढोंग ? कैसा ढोंग ?"

"अब साफ़-ही कहलाइयेगा ?"

"हाँ, कहिये, साफ़ कहने में किसका डर ?"

"अच्छा यह बताइये, कितना रुपया लेकर आप फैसला करने को तैयार हैं ?"

"फैसला ?—रुपया ??"

"हाँ जी, रुपया ! हम क्या समझते नहीं ? मगर उस्ताद, मानते हैं तुम्हें; रुपया पैदा करने का यह रास्ता तुम्हींने ईजाद किया है !"

गाँधी जी घबड़ाकर कुर्सी से उठ खड़े हुए और बोले—"आप क्या अनर्गल प्रलाप कर रहे हैं ? होश में आकर बातें कीजिये ! क्या आपने मुझे रुपया लेकर आदर्श को बेच देने वाला समझ रखा है ?"

"अजी, आप बैठिये तो सही, आप बड़े कौम-परस्त हैं ? देखिये, यह बात किसी को कानों-कान मालूम न हो पायगी ? बोलिये, एक हज़ार पौंड·······!" कहते-कहते चेक-बुक और कलम निकाल ली गई।

गाँधी जी ने पगड़ी सम्हाली और बोले—"साहब, मेरे कान इन बातों को सुनने के पहले फूट जायँ तो अच्छा। मैं चला !"

अब गोरों की अक्ल का पर्दा उठा, और नम्रतापूर्वक गाँधीजी से बैठने को कहा गया।

बैठकर गाँधी जी बोले,—"देखिये, न तो मैं आदर्शों को बेचता हूँ, न मुझे आप से समझौता करने का अधिकार है। मेरी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप अपने आश्रित मज़दूरों पर दया करके सरकार से उनके दुःख दूर करने का आग्रह करें।"

लज्जित-स्वर में उधर से झुंझलाकर पूछा गया—"अच्छा तो आप मज़दूरों को हड़ताल ख़तम करने की सलाह नहीं देंगे?"

"दे सकता हूँ, अगर आप मुझे इस बात का निश्चय दिलायें, कि कब उनके दुःख दूर हो सकेंगे?"

"मगर हम तो अफ़सर नहीं हैं, हम ऐसा निश्चय कैसे दिला सकते हैं?"

"अगर आपके हृदय में मज़दूरों के प्रति सद्भावना और सहानुभूति पैदा हो जाय, तो सब काम ज़रा-सी देर में हो जाय। मैं वही सद्भावना और सहानुभूति आप में देखना चाहता हूँ।"

अब उधर से गुर्राकर कहा गया—"अच्छा, अब यह दार्शनिकता छौंकने से बाज़ आइए, और सीधी तरह बताइये, आप इस हड़ताल के नेतृत्व से दस्त बरदार होते हैं, या नहीं?"

"मैंने पहले ही कहा, मैं नेता नहीं हूँ, मैं तो एक तुच्छ सेवक की हैसियत से काम कर रहा हूँ।"

"ख़ैर, ये बातें तो हो चुकीं, अब सीधे-सीधे शब्दों में अर्ज़ यह है। कि अगर आपकी और आपकी क़ौम की शामत ने धक्का नहीं दिया है तो चौबीस घण्टे के अन्दर इस हड़ताल को समाप्त करा दीजिये।"

"क्या बताऊँ, मुझे जो कहना था, कह चुका।"

"यह कहना-सुनना सब धरा रह जायगा। याद रखिए, यह सारी हेकड़ी जेल की सैर करके हवा हो जायगी। यह अङ्गरेज़ों का मामला है, इसमें आपकी धौंस नहीं चल सकती। वाह जी वाह! ख़ासे रहे।

आज कहते हैं, 'कर' रद्द करो, कल कहेंगे तनख्वाह बढ़ाओ, परसों कहेंगे हमारे जूते साफ़ करो, वरना हम हड़ताल करते हैं।"

"मगर देखिये, यह तो धौंस नहीं, आग्रह और विनय है।"

"विनय इस तरह होती है? विनय करनी है, तो नौकरी पर आकर विनय करें।"

"मुँह की विनय और आग्रह का आप पर असर नहीं हुआ? अब ये बेचारे अपने दुःखों के प्रतिकार के लिये अगर वैध उपायों का अवलम्बन करते हैं तो आप क्यों चिढ़ते हैं।"

"अच्छा बस, हो चुका। आप यह समझ रखिये कि आप अपने ऊपर बड़ी भारी ज़िम्मेवारी ले रहे हैं।"

"अपनी ज़िम्मेवारी को आपसे ज्यादा मैं समझते हूँ।"

"खैर, आपकी इच्छा, मगर यह समझ रखिये कि खून की नदियाँ बह जायँगी, पर अङ्गरेज़ किसी की धौंस में आकर बाल बराबर न दबेंगे।"

"धौंस तो आप को दी नहीं गई; रही दबने की बात, सो सत्याग्रह की शक्ति में मुझे पूर्ण विश्वास है और समय पर आप भी देखेंगे।"

"अच्छी बात है, अब हम भी देखकर ही मानेंगे। या तो देखेंगे या दिखा देंगे।"

"खैर, जो आप की इच्छा हो, मुझे विदा दीजिये।"

कहकर गाँधी जी खड़े हो गये।

एक उच्छृङ्खल युवक खान के मालिक ने कड़क कर कहा—"अच्छा पहले आपका तो सफ़ाया करूँ, कीजिये परमेश्वर को याद।"

सब ने देखा, उसने पिस्तौल का निशाना गाँधी जी की तरफ़ साध रक्खा है।

गाँधी जी ने अविचलित स्वर में कहा—"क्या मार डालियेगा?"

"क्यों? क्या तुम्हें इसमें संदेह है?"

"मुझे तो पूरा सन्देह है। जो मनुष्य ऐसे समय भी मुझ से परमात्मा को याद करने की प्रेरणा कर रहा है, मेरी समझ में वह कभी

घातक नहीं हो सकता। मुझे विश्वास नहीं होता कि आप मुझे मारेंगे।"

ओफ ! कैसी ऊँची बात ! सब-के-सब एक बार सन्न हो गये। तब एक गोरे ने उस युवक से कहा—"वेलिङ्गटन इसकी आवश्यकता नहीं है, पिस्तौल जेब में रख लो।"

युवक ने पिस्तौल जेब में रख लिया और हंसता हुआ बोला—"ओह ! मैं तो मज़ाक करता था। गांधी, तुम बुरा तो नहीं मान गये।"

"बिलकुल नहीं।"

उस नवयुवक ने गांधी जी का हाथ पकड़कर कहा—"गांधी, ईश्वर तुम्हें विजय दिलाये।"

गांधी जी के हृदय से 'कार्यं वा साधयेयं' की मूक ध्वनि निकल रही थी।

उपसंहार

सात हज़ार मजदूर समुदाय के साथ गांधी जी ट्रान्सवाल की तरफ़ जा रहे हैं। तीन बार वे पकड़े गये हैं, और तीनों बार छोड़ दिये गये हैं। सत्याग्रह-संग्राम के लिए जाते हुए इन हजारों योद्धाओं में तीन बार नया जोश पैदा हुआ है।

पर सरकार यह कैसे मँजूर करे। अफ्रीका की आवाज़ देश-देशान्तरों में पहुँच रही है। सब तरफ़ घोर संघर्षण शुरू हो गया है। धड़ाधड़ मिलें बन्द हो रही हैं और दमन का चक्र चल रहा है।

आखिर एक दिन वह सात हज़ार मज़दूरों का समुदाय गिरफ्तार हो जाता है।

पर इससे कहीं लहर दब सकती थी? रोज़ मिलें बन्द होने लगीं, चारों ओर अशांति का राज्य हो गया। और एक बार तो ऐसा मालूम हुआ कि निस्सहाय भारतीय मजदूर अपनी एकता, सङ्गठन शक्ति, और सहन-शीलता के बल पर गोरों को पागल बना देंगे। भारत में आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। धड़ाधड़ भारतीय आने लगे। यूरोप में भी तार पहुँचे। इङ्गलैण्ड के पत्रों के कालम भरे गये। और धूर्त-शिरोमणि, पाजी, झूठे, जनरल स्मट्स की आँखों में क्रोध, क्षोभ, अपमान और लाचारी के आँसू भर आये और उसकी कूटनीतिज्ञता को भी दुम दबा कर भागना पड़ा। और बात तो बहुत लम्बी है, मगर संक्षेप में।

३० जून १९१४ ई० को भारतीयों की युद्ध-विषयक लगभग सभी बातें मान ली गईं, तीन पौंड का कर रद्द हुआ, विवाह जायज माने गये, और महापुरुष गांधी के अभूतपूर्व युद्ध—

सत्याग्रह

में शानदार विजय मिली। आठ वर्ष तक दक्षिण-अफ्रीका में इस युद्ध का छोटा-सा खेल खेलकर कृष्ण या ख्रीष्ट का यह अवतार भारत-भूमि के सत्याग्रह-संग्राम में जुट गया।